दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

मार्च २०१८

Date of Printing = 05-03-18
प्रकाशन दिनांक= 05-03-18

वर्ष ४७ : अङ्क ५
दयानन्दाब्द : १९४
विक्रम-संवत् : फाल्गुन-चैत्र, २०७४-२०७५
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११९

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- ❑ क्या मुसलमान आतंकवाद.... २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ अष्टाध्यायी में स्थानिवत्त्व ५
- ❑ दिशाहीन होता देश का भविष्य ८
- ❑ जब सत्य की जीत हुई ११
- ❑ महर्षि दयानन्द सरस्वती का सत्योपदेश १५
- ❑ संसार भर के..... १७
- ❑ वेदों की रक्षा.... २०
- ❑ संस्कारों के अभाव में.... २२

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण **३००० रुपये सैकड़ा**
स्पेशल (सजिल्द) **५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।**

क्या मुसलमान आतंकवाद के खिलाफ हैं?

(कृष्ण चन्द्र गर्ग,पंचकूला मो0:-09501467456)

सीएनएन (CNN) टीवी चैनल पर उग्रवादी इस्लाम पर बहस के दौरान अमरीकी सूनी मुस्लिम महिला रहील रज़ा (Raheel Raza) ने कहा- लगभग हर रोज हमें बताया जाता है कि इस्लामिक आतंकवाद का इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं है पर वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है। राजनैतिक स्वार्थों के कारण नेता लोग सच नहीं बोल रहे, समस्या से आँखें चुरा रहे हैं और जनता को गुमराह कर रहे हैं।

पहले जानिए इस सम्बन्ध में अमेरिका की दो बड़ी हस्तियों के झूठ को- अमेरिका की पूर्व विदेश सचिव (मन्त्री) हिलेरी क्लिंटन- "Muslims are peaceful and tolerant people and having nothing, what so ever, to do with terrorism." अर्थ- मुसलमान शान्तिप्रिय और सहनशील लोग हैं, आतंकवाद से उनका बिल्कुल कोई भी सम्बंध नहीं है।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा- "Al-Qaeda's cause is not Islamic. ISIS is not Islamic. The overwhelming majority of Muslims reject that interpretation of Islam. It is very important for us to allign overselves with 99.9% Muslims who do not support extremism." अर्थ- अलकायदा जो कर रहा है, वह इस्लाम की इस व्याख्या को नहीं मानते। हमारे लिए अति महत्वपूर्ण है कि हम अपने आप को उन ९९.९% मुसलमानों के साथ जोड़ें, जो उग्रवाद के समर्थक नहीं हैं।

अब जानिए सच्चाई क्या है, रहील रज़ा के द्वारा- इस समय संसार में लगभग १६० करोड़ मुसलमान हैं और इस्लाम सबसे अधिक तेजी से बढ़ रहा मजहब है।

बड़ा भारी नुकसान और बड़ा भारी कत्लेआम करने के लिए थोड़े से आतंकवादी ही काफी हैं, जबकि सिर्फ आईएसआईएस (ISIS) के खतरनाक कातिल जेहादियों की संख्या ४०,००० से २,००,००० तक है। इसके अलावा अलकायदा, हेजबुल्लाह, हमास, बोकोहरम आदि अन्य बहुत से जेहादी संगठनों के लाखों आतंकवादी हैं।

वैज्ञानिक ढंग से किए गए पोल (POLLS) के आधार पर अनुसंधान करने वाले बड़े- बड़े संगठनों ने बारम्बार हमें जो बताया है, वह बहुत परेशान करने वाला है। प्यू रिसर्च (Pew Research) ने सन् २०१३ में संसार के ३९ देशों के हजारों मुसलमानों का सर्वे (Survey) करने के बाद जो आंकड़े तैयार किए, वे निम्न प्रकार से हैं-

अफगानिस्तान, ईजिप्ट, जॉर्डन आदि कई मुस्लिम देशों में ७९% से ८६% तक मुसलमान मानते हैं कि जो इस्लाम के मजहब को नहीं मानता, उसका कत्ल कर दिया जाना चाहिए।

सारे संसार में सर्वे (Survey) के अनुसार २७% अर्थात् २३ करोड़ ७० लाख मुसलमान मानते हैं कि जो इस्लाम के मजहब को नहीं मानता, उसका कत्ल हो जाना चाहिए।

संसार के ३९% अर्थात् ३४ करोड़ ५० लाख मुसलमान मानते हैं कि जिस स्त्री के शादी से पहले किसी पुरुष से या शादी के बाद किसी गैर पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध रहे हों, उसे कत्ल कर देना चाहिए।

पश्चिमी देशों के १८ से २९ वर्ष की आयु के मुसलमान नौजवान, जो मानते हैं कि गैर मुस्लिम लोगों पर आत्मघाती हमले करना जायज है, उनकी संख्या इस प्रकार है-

फ्रांस के मुसलमान नौजवान - ४२%
ब्रिटेन के मुसलमान नौजवान - ३५%
अमेरिका के मुसलमान नौजवान - २६%

मुस्लिम बहुसंख्या वाले देशों में ५३% मुसलमान शरीया कानून के पक्ष में हैं। इनमें ५२% अर्थात् २८ करोड़ ९० लाख मुसलमान अपराध की स्थिति में कोड़े मारने तथा शरीर का अंग काट देने के पक्ष में हैं और ५१% अर्थात् २८ करोड़ १० लाख मुसलमान अगर औरत बेवफा हो जाए, तो उसे पत्थर मार-मार जाने से मार देने के पक्ष में हैं।

नोट - रहील रज़ा "MUSLIMS FACING TOMORROW" नाम की संस्था की अध्यक्ष हैं। वे पिछले बीस वर्षों से आतंकवाद के सम्बन्ध में मुसलमानों की वास्तविक मानसिकता की पोल खोलने का काम कर रही है। (सोर्स-इंटरनेट)

❑❑

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **यज्ञः = स्पष्टम् देवता।** स्वराडार्षी त्रिष्टुप छन्दः। धैवतः स्वरः।।

स यज्ञः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते।।

वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है।।

ओ३म् वसोः पवित्र**मसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।**
परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।2।।(यजु0 १/२)

पदार्थ **(वसोः)** वसुः। **अत्रार्थाद्विभक्तेर्विपरिणाम इति प्रथमा विभक्तिर्विपरिणम्यते। यज्ञो वै वसुः।। श. १।५।४।६।।** **(पवित्रं)** पुनाति येन कर्मणा तत् **(असि)** भवति। **अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः।** **(द्यौः)** विज्ञानप्रकाशहेतुः **(असि)** भवति **(पृथिवी)** विस्तृतः **(असि)** भवति **(मातरिश्वनः)** मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः। **शवन्नुक्षन्०।। उ. १/१५७। अनेनायं शब्दो निपातितः। मातरिश्वा वायुर्मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति मातर्य्याश्वनितीति वा। निरुक्त ७/२६।।** **(धर्मः)** अग्नितापयुक्तः शोधकः। **धर्म इति यज्ञनामसु पठितम्।। निघं० ३/१७।।** **(असि)** भवति **(विश्वधाः)** विश्वं दधातीति **(असि)** भवति **(परमेण)** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **(धाम्ना)** सुखानि यत्र दधाति तेन। **बाहुलकाड्डुधाञ्धातोर्मनिन् प्रत्ययः** **(दृꣳहस्व)** वर्धते। **अत्र पुरुषव्यत्ययो लडर्थे लोट् च** **(मा)** निषेधार्थे (ह्वाः) ह्वरतु। **अत्र लोडर्थे लुङ्** **(मा)** निषेधार्थे **(ते)** तव **(यज्ञपतिः)** यज्ञस्य स्वामी यज्ञकर्ता यजमानः। **धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति। विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमर्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं सम्यक्पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणमित** **(ह्वार्षीत्)** ह्वरतु ह्वर वा। **अत्रापि लोडर्थे लुङ् ।। अयं मन्त्रः श० १/५/४/६-११ व्याख्यातः ।।२।।**

प्रमाणार्थ **(वसोः)** वसुः। यहां 'अर्थ के कारण विभक्ति का विपरिणाम होता है' इस नियम के अनुसार 'वसोः' पद प्रथमा विभक्ति में विपरणित किया जाता है। शत० (१/५/४/६) में वसु का अर्थ यज्ञ है। **(असि)** भवति। इस मन्त्र में सब जगह पुरुष-व्यत्यय है। **(मातरिश्वनः)** श्वन्नुक्षन् (उ० १/१५७) में 'मातरिश्वा' शब्द निपातित है। निरुक्त (७/२६) में मातरिश्वा का अर्थ वायु है। मातरि= आकाश में, श्वसिति=गमन करता है एवं आश्वनिति= शीघ्र गमन करता है, अतः वह मातरिश्वा कहाता है। **(घर्मः)** 'घर्म' शब्द निघं० (३/१७) में यज्ञ-नामों में पढ़ा है। **(धाम्ना)** यहां 'डुधाञ्' धातु से बहुल करके 'मनिन्' प्रत्यय है। **(दृꣳहस्व)** वर्धते। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है और लट्-अर्थ में लोट्-लकार का प्रयोग है। **(ह्वाः)** ह्वरतु। यहाँ लोट् अर्थ में लुङ्-लकार है। **(ह्वार्षीत्)** ह्वरतु ह्वर वा। यहाँ भी लोट् अर्थ में लुङ् है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१/५/४/६-११) में की गई है। १/२।।

सपदार्थान्वयः **हे विद्वन्मनुष्य! त्वं यो वसोः=वसुरयं यज्ञः, पवित्रमसि=पवित्रकारकोऽस्ति** (पवित्रम्=पुनाति येन कर्मणा तत्, असि=भवति), **द्यौरसि=सूर्यरश्मिस्थो भवति** (द्यौः=विज्ञानप्रकाशहेतुः, असि=भवति), **पृथिव्यसि=वायुना सह विस्तृतो भवति** (पृथिवी=विस्तृतः, असि=भवति), **तथा-मातरिश्वनो घर्मोऽसि=वायोः शोधको भवति** (मातरिश्वनः=मातरि=अन्तरिक्षे श्वसिति आश्वनिति वा तस्य वायोः, धर्मः=अग्नितापयुक्तः शोधकः, असि=भवति) **विश्वधाअसि=संसारस्य सुखधारको भवति** (विश्वधाः=विश्वं दधातीति, असि=भवति) **परमेण** प्रकृष्टसुखयुक्तेन **धाम्ना** सुखानि यत्र दधति तेन **सह दृंश्ह्स्व=दृंहते=वर्धते।**

तमिमं यज्ञं मा ह्वाः=मा त्यज, (ह्वाः=ह्वरतु), **तथा-ते=तव यज्ञपतिः** यज्ञस्य स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमानः। धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिधा भवति-विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपार-मार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं, सम्यक्पदार्थगुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षी-करणं नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं, शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणामिति, **तं मा ह्वार्षीत्=मा त्यजतु** (ह्वार्षीत्=ह्वरतु ह्वर वा) ।।१।२।।

भाषार्थ : हे विद्वान् मनुष्य! तू जो **(वसोः)** यज्ञ **(पवित्रम्)** पवित्र करने वाला **(असि)** है, अर्थात् पवित्र करने वाला कर्म है, **(द्यौः)** सूर्य की किरणों में स्थिर और विज्ञान प्रकाश का हेतु **(असि)** है, **(पृथिवी)** वायु के साथ देश-देशान्तरों में फैलने वाला **(असि)** है, तथा **(मातरिश्वनः)** वायु का **(घर्मः)** शोधक **(असि)** है, अर्थात्-अन्तरिक्ष में गति करने से वायु का नाम मातरिश्वा है, उस वायु का **(घर्मः)** अग्निताप से शोधक है, **(विश्वधा)** संसार के सुख को धारण करने वाला **(असि)** है एवं विश्व का धारक है, **(परमेण)** उत्तम सुख से युक्त **(धाम्ना)** लोक के साथ **(दृहस्व)** बढ़ता है।

उस यज्ञ का **(मा ह्वाः)** त्याग मत कर तथा **(ते)** तेरा **(यज्ञपतिः)** यज्ञ का स्वामी, यज्ञकर्ता=यजमान भी उसे **(मा ह्वार्षीत्)** न छोड़े। धात्वर्थ के कारण 'यज्ञ' शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है

१. विद्या, ज्ञान और धर्माचरण से वृद्ध विद्वानों का इस लोक और परलोक के सुख की सिद्धि के लिए सत्कार करना, २- अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोधज्ञान की संगति से शिल्प विद्या का प्रत्यक्ष करना एवं नित्य विद्वानों का संग करना, ३-शुभ विद्या, सुख धर्मादि गुणों का नित्य दान करना।।

(वसोः= वसुरयं यज्ञः पवित्रमसि..... अस्ति, द्यौरसि. .. भवति, पृथिव्यसि, मातरिश्वनो घर्मोऽसि, विश्वधा असि)

भावार्थः मनुष्याणां विद्याक्रियाभ्यां सम्यगनुष्ठितेन यज्ञेन पवित्रता, प्रकाशः, पृथिवी, राज्यं, वायुप्राणवद्राज्यनीतिः, प्रतापः, सर्वरक्षा

अस्मिंल्लोके परलोके च परमसुखवृद्धिः, परस्परमार्जवेन वर्तमानं, कुटिलतात्यागश्च जायते।

अतएव सर्वैर्मनुष्येः परोपकाराय, विद्या-पुरुषार्थाभ्यां, प्रीत्या यज्ञो नित्यमनुष्ठातव्य इति।।१।२।।

भावार्थ मनुष्यों को विद्या और क्रिया के द्वारा विधिपूर्वक किये यज्ञ से पवित्रता, प्रकाश, पृथिवी, राज्य, वायु अर्थात् प्राण के तुल्य राज्यनीति, प्रताप, सबकी रक्षा

इस लोक और परलोक में परम सुख की वृद्धि, परस्पर सरलता से वर्ताव और कुटिलता त्याग की प्राप्ति होती है।

इसलिए सब मनुष्यों को परोपकार के लिए विद्या और पुरुषार्थ से प्रीतिपूर्वक यज्ञ नित्य करना चाहिए।।१/२।।

अष्टाध्यायी में स्थानिवत्त्व

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो0:- 09845058310)

दयानन्द सन्देश- जून २०१६ में मैंने अष्टाध्यायी के सूत्र **"स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (१/१/५५)"** पर टिप्पणी की थी, जिससे कि सूत्र में भासित क्लिष्टता दूर हो जाती है। मैंने सूत्र को सरलता से समझने का एक प्रकार दिया था। इस सूत्र के आगे के ३ सूत्र भी इससे सम्बद्ध हैं। किसी पाठिका ने मुझे उन पर भी अपना फार्मूला लगाने का प्रकार पूछा है। अवश्य ही उन में भी क्लिष्टता है, जो कि सरल विवरण की अपेक्षा रखती है सो, उन सूत्रों की व्याख्या इस लेख में प्रस्तुत कर रही हूँ। वैसे तो मैं अपने पूर्व लेख का निष्कर्ष पुनः दे रही हूँ, तथापि यदि संशय हो, तो पूर्व लेख पुनः पढ़ लें।

पूर्वलिखित व्याख्या पर सिंहावलोकन

अष्टाध्यायी के अतिदेश प्रकरण में पहला सूत्र है-

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (१/१/५५),

जिसका अर्थ है कि, जिस सूत्र में अल्विधि का प्रकरण न हो, वहाँ विधीयमान आदेश स्थानिवत् हो। यथा- 'प्रकृत्य' शब्द बनाने में 'प्र+क्त्वा' में "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् (७/१/३७)"सूत्र से क्त्वा को ल्यप् आदेश हुआ, जो ल्यप् स्वयं कृत्-प्रत्यय के रूप में निर्दिष्ट नहीं है। परन्तु क्त्वा के कृत् होने से, ल्यप् भी कृद्वत् हो गया और 'प्रकृत्य' शब्द कृदन्त ही कहलाया।

दूसरी ओर जहाँ भी अल्विधि होती है, वहाँ आदेश स्थानिवत् नहीं होता। जैसे- **'द्यौः'** की सिद्धि में "दिव औत्, अनु.-सौ अङ्गस्य (७/१/८४)" से, सु परे रहते, 'दिव्' अङ्ग के अन्त्य वकार को औकारादेश होता है- दि+औ। यहाँ 'औत्' अल् है, सो वह 'व्' के सथानिवत् नहीं हुआ, इसलिए यहां "हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्, अनु०-लोपः (६/१/६६)" की प्रवृत्ति नहीं हुई और हल् 'व्' के परे सु का लोप नहीं हो सका।

पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी की अष्टाध्यायी पर प्रथमावृत्ति भाष्य से प्रतीत होता है कि 'अल्विधि' में चार प्रकार का समास सम्भव है-

(१) अला विधिः - अल् के द्वारा विधि
(२) अलः विधिः - अल् से परे विधि
(३) अलः विधिः - अल् के स्थान में विधि और
(४) अलि विधिः - अल् के परे रहते विधि।

परन्तु यह पतञ्जलि और इस कारण से पाणिनि-सम्मत नहीं है, क्योंकि महाभाष्य में पतञ्जलि लिखते हैं, **"यत्र प्रधान्येनालाश्रीयते, तत्रैव प्रतिषेधः स्यात्। यत्र विशेषणत्वेनालाश्रीयते,तत्र प्रतिषेधो न स्यात्।"** अर्थात् जहां प्रधानता से अल् का आश्रय हो, वहां (स्थानिवत्त्व का) प्रतिषेध हो जायेगा, जहां विशेषण के रूप में अल् विहित है, वहां नहीं होगा। या मेरे शब्दों में- किस प्रकार से विधि हुई हो (अला/अलः/अलि), यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्व है तो इस बात का कि अल् के स्थान में कोई नया अल् आया है क्या? या किसी अल् का लोप हुआ है क्या? यदि हां, तो वह अल्विधि है। फिर उस नए अथवा लुप्त अल् को पूर्व अल् के बराबर मानना, उसका स्थानी मानना, बुद्धिपरक नहीं है, क्योंकि जिस कारण से अलों की अदला-बदली की गई है, वह कार्य न हो सकेगा। इसलिए पाणिनि ने स्पष्टतया उसका निषेध कर दिया। यही यह सूत्र कह रहा है। पतञ्जलि आगे स्पष्ट कर देते हैं कि यदि स्थानी अल् स्वयं प्रत्यय, प्रतिपादिक आदि रूप में विशेषित हो, तो वह स्थानिवत् हो जाए। अर्थात् अल्-प्रत्यय के स्थान में आने वाला अल् भी प्रत्यय ही होगा, आदि, आदि।

अब इस अतिदेश सूत्र से सम्बद्ध अगला सूत्र देख लेते हैं, जो कि किञ्चित् क्लिष्ट है- **अचः परस्मिन्**

पूर्वविधौ, अनु०- स्थानिवदादेशः (१/१/५६)- अर्थात् जब स्थानी अच् के ऊपर कोई अल्विधि होती है और उसके अनन्तर पिछले वर्ण से आदिष्ट अच् के पूर्व वर्ण पर यदि कोई विधि होने लगती है, तो आदिष्ट अल् स्थानिवत् हो जाता है।

इसको प्रथमावृति में दिए उदाहरण द्वारा समझते हैं। 'पटयति' की निष्पत्ति में "पटुमाचष्टे" वाक्य से प्रारम्भ करने पर 'पटु अम् णिच्' बना। अब "सनाद्यन्ता धातवः (३/१/३२)" से इसकी धातु संज्ञा होने पर, सुपो धातुप्रातिपदिकयोः (२/४/७१)" से अम् का लुक् हो गया- पटु इ। तब "णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य (वा० ६/४/१५५)" से णिच् परे रहते, इष्ठन् के समान, "टेः (६/४/१५५)" से, अंग के टि का लोप हो जाएगा- पट् इ। अब पर णित इ के कारण "अत उपधायाः (७/२/११६)" से पूर्व पट् के अकार को वृद्धि प्राप्त होने लगी, स्थानी उ के लोप हो जाने के कारण। जैसा हमने ऊपर देखा, वर्ण-लोप भी अल्विधि के अन्तर्गत है। सो, यहाँ प्रकृत् सूत्र से उकार लुप्त हो जाने पर भी स्थानिवत् वर्तमान मानकर पट् के अकार की वृद्धि नहीं हुई और, 'पाटयति' नहीं, प्रत्युत इष्ट रूप 'पटयति' ही बना। अगले पद 'अवधीत्' की निष्पत्ति में भी, बीच के वर्ण के लोप होने के कारण, पर वर्ण के कारण पूर्व किसी वर्ण पर विधि पाते हैं। तृतीय उदाहरण 'बहुखट्वकः' में जो स्वर-निर्देश में इस सूत्र की प्रसक्ति दिखाई है, मेरे अनुसार वह सही नहीं है, क्योंकि इसके अगले ही सूत्र में स्वर-कार्य में अच् के स्थानिवत मानम जाने का पुनः प्रतिषेध किया गया है। इससे कुछ यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृत् सूत्र की प्रसक्ति तब होती है,जब बीच का अच् लुप्त हो जाता है। तब, पर के कारण पूर्व पर कोई विधि होने लगती है, जो कि अनिष्ट है। इसके लिए लुप्त अच् को स्थानिवत् मानना आवश्यक हो जाता है। यह बुद्धि सम्मत ही लगता है- जिस प्रकार "नेत्र उन्मीलयति" में, सन्धि द्वारा 'नेत्रे' का 'नेत्र' हो जाने पर, पुनः 'नेत्र' के अकार की 'उन्मीलयति' के उकार से सन्धि नहीं की जाती- उसी तरह एक स्थान पर एक प्रक्रिया लगाने पर, पुनः वहीं पर पहली प्रक्रिया के कारण दूसरी प्रक्रिया लगाना व्याकरण के नियमों के साथ खेलना होगा।

अग्रिम सूत्रों का विवरण

अब अगले दो सूत्र प्रकृत् सूत्र के अपवाद हैं और कुछ विशेष प्रकरणों में स्थानिवत्-कार्य का निषेध करते हैं। जैसे- **"नपदान्तद्विर्वचन वरेयलोप स्वर सवर्णानुस्वार दीर्घ जश्चर्विधिषु, अनु०- अचः परस्मिन् पूर्वविधौ, स्थानिवदादेशः (१/१/५७)"** में, पूर्वसूत्र की स्थिति उत्पन्न होने पर भी, पदान्त में, द्विर्वचन होने पर, वरे प्रत्यय होने पर, यलोप, स्वर, सवर्ण, या अनुस्वार होने पर, दीर्घ, जश्त्व अथवा चर्त्व प्राप्त होने पर, आदिष्ट अच् स्थानिवत् नहीं होता। इससे अगला सूत्र इस सूत्र के 'द्विर्वचन' का एक विशिष्ट स्थिति में अपवाद प्रस्तुत करता है-"द्विर्वचनेऽचि,अनु०-अचः परस्मिन् पूर्वविधौ,*** स्थानिवदादेशः (१/१/५८)"** अर्थात् १/१/५७ की द्विर्वचन-विधि में, यदि पर-निमित्त द्विर्वचन-प्रत्यय अजादि हो, तब भी आदिष्ट अच् स्थानिवत् हो जायेगा।

पूर्णतया समझने के लिए, इन दोनों सूत्रों के एक-एक उदाहरण देख लेते हैं।

पदान्तविधि में अस्थानिवत्व-

"कौ स्तः" वाक्य बनाने में, पहले अदादिगणस्थ 'अस् भुवि' धातु का प्रथम पुरुष का द्विवचनीय रूप बनाना है। सो, अस् शप् तस् प्राप्त हुआ, जहाँ "अदिप्रभृतिभ्यः शपः, अनु०-लुक् (२/४/७२)" से शप् प्रत्यय का लुक् हो गया- अस् तस्। लुक् होने के कारण, "न लुमताङ्गस्य (१/१/६२), अनु०- प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्" से प्रत्यय का लक्षण भी शेष नहीं रहा। तब तस् के सार्वधातुक और अपित् होने के कारण, वह "सार्वधातुकमपित्, अनु.-ङित् (१/२/४)" से ङित् नहीं रहा। तब तस् के सार्वधतुक और अपित् होने के कारण, वह ''सार्वधातुकमपित, अनु०-ङित् (१/२/४)'' से ङित् हो गया। फिर "श्नसोरल्लोपः, अनु०-सार्वधातुके, क्ङिति

(६/४/१११)" से अस् के अ का लोप हो गया-स् तस्। अन्त्य स् का विर्सजनीय होकर, स्तः प्राप्त हो गया। यह अलोप अल्विधि है। 'कौ' की सिद्धि की यहाँ आवश्यकता नहीं है। अब "कौ स्तः" में वैसे तो सन्धि नहीं प्राप्त है, तथापि यदि हम यहाँ अ को स्थानिवत् मानें तो 'काव्स्तः' रूप बनने लगता है, जो कि अनिष्ट है। तब प्रकृत् सूत्र ने स्थानिवत्त्व का निषेध कर दिया क्योंकि 'कौ' पद है और यह सन्धि पदान्त में हो रही है।

मेरे अनुसार, सूत्रों की प्रवृत्ति वहीं होती है, जहाँ सारी निर्दिष्ट दशाएं उपलब्ध हों, ऐसे नहीं कि कोई काल्पनिक दशा का सृजन करके उस पर सूत्र लगाने का प्रयास किया जाए। सो, जब "कौ स्तः" में पर के कारण पूर्व को सन्धि प्राप्त ही नहीं है, तो "अचः परस्मिन्० (१/१/५६)" की प्रवृत्ति हुई ही नहीं क्योंकि, इस सूत्र के लिए, जब मध्य के अच्, जिसपर कोई अल्विधि हुई हो, का पिछला अल् पूर्व अल् पर कोई कार्य करे, तब उसकी प्रवृत्ति होगी। अन्यथा अल्विधि होने के कारण "स्थानि० (१/१/५५)" से स्थानिवत्त्व वर्जित है ही। उपर्युक्त उदाहरण में लुप्त अ को बिना कारण ही स्थानिवत् मानकर सन्धि दिखाना, फिर इस सूत्र के कारण अ स्थानिवत् नहीं है ऐसा दर्शाना- यह गलत है- कारण और कार्य में संकर है। यह १/१/५५ का उदाहरण माना जा सकता है, जो १/१/५५ की आवश्यकता पर प्रकाश डाले। १/१/५७ के लिए यह उदाहरण उपयुक्त नहीं है, किसी अन्य उदाहरण को यहाँ लिया जाना चाहिए।

अजादिद्विर्वचनविधि में स्थानिवत्व-

'आटिटत्' 'अट गतौ' के णिजन्त का लुङ् १/१ का रूप है- अट् णिच् तिप्। "अत उपधायाः, अनु०-ञ्णिति, वृद्धिः, अङ्गस्य (७/२/११६)" से अट् ने वृद्धि पाई और णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्, अनु०-च्लेः लुङि,धा(३/१/४८) से चङ् होगा-आटि चङ् तिप्। णेरनिटि, अनु०-लोपः,आर्धधातुके,अङ्स्य (६/४/५१) से णिर्च् का लोप हो गया और लोप होने से प्रत्यय का लक्षण बना रहा- आट् चङ् तिप्। अब चङ् के परे रहते, आट् के द्वितीय एकाच् को द्वित्व प्राप्त हुआ- "चङि, अनु०-धातोंरनभ्यासस्य, ऐकाचो द्वे प्रथमस्य, अजादेर्द्वितीयस्य (६/१/११)" से, परन्तु द्वितीय अच् तो है ही नहीं, क्योंकि णिच् के इकार का लोप हो गया था! सो, यहाँ पर-चङ् से पूर्व-आट् पर कार्य होने से, और द्विर्वचन का प्रसंग होने से, प्रकृत् सूत्र की प्रवृत्ति हो जाती है और लुप्त इकार स्थानिवत् हो जाता है। तब ट् का इकार के साथ द्वित्व हो जाता है- आ टि ट् चङ् तिप्। अन्य सब कार्य करके आटिटत् रूप सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह विलक्षणता है कि ६/४/५१ में अल्विधि नहीं थी, बल्कि प्रत्यय का लोप हुआ था। परन्तु, प्रकृत् सूत्र में 'अल्विधि' की अनुवृत्ति नहीं है। सो, इस कार्य में कोई व्यवधान नहीं है। दूसरी बात यहाँ समझने की यह है कि चङ् का मुख्य प्रयोजन लुङ् के पूर्व अकार लाने का है, अर्थात् णिच् के अकार को भी निकालकर अकार लाना है। इसलिए इ का तो लोप कर दिया, परन्तु द्वित्व में हमें इकार रखना है, जिससे णिजन्त रूप भी स्पष्ट रहे। इसलिए इस सूत्र को बनाया गया है।

जबकि ये सूत्र किञ्चित् कठिन हैं, विशेषकर १/१/५६, तथापि मेरे प्रकार से समझने से कुछ सरलता आ जाती है। यही नहीं, उदाहरणों में चूक भी पकड़ में आने लगती है। उपर्युक्त से हम देखते हैं, कि इस प्रकरण में दिए उदाहरण कई बार सही नहीं हैं। उनकी त्रुटि समझकर, हमें नए उदाहरणों का अन्वेषण करना चाहिए। मेरे प्रकार से समझने से पाणिनि के सूत्र बुद्धिसम्मत भी दिखने लगते हैं। इससे इनको याद रखने में कठिनता कम हो जाती है और केवल रटने का आश्रय नहीं लेना पड़ता।

* प्रथमावृत्ति में ''परस्मिन पूर्वविधौ'' की अनुवृत्ति यहाँ नहीं ली गई है, परन्तु उदाहरणों से उसकी अनुवृत्ति उपयुक्त लगती है। इस प्रकार यह सूत्र पूर्व सूत्र का अपवाद मानना चाहिए।

❑❑

दिशाहीन होता देश का भविष्य

(धर्मपाल आर्य)

मेरा मन था कि इस बार होली अथवा शिवरात्रि पर लिखूँगा लेकिन पिछले (फरवरी) महीने दो-तीन मामले ऐसे आए, जिन्होंने मुझे उन विषयों पर लिखने को विवश कर दिया। पहला मामला है जे०एन०यू० (जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली) का जहाँ छात्र कक्षाओं में होने वाली ७५ प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता का विरोध कर रहे हैं और दूसरा प्रकरण अलीगढ मुस्लिम युनिवर्सिटी के दीक्षान्त समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में आने वाले भारत के महामहिम राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द का वहाँ के छात्रों द्वारा विरोध करना। दोनों प्रकरणों के केन्द्र में छात्र हैं और दोनों ही प्रकरणों में पर्दे के पीछे राजनीति अपना नकारात्मक अभिनय कर रही है। लोकतन्त्र की आड़ लेकर राष्ट्र विरोधी धरने, प्रदर्शन करना, राष्ट्र विरोधी नारे लगाना, कुछ राजनीतिज्ञों का, विश्वविद्यालयों के छात्रों और शिक्षकों का स्वभाव सा बन गया है। छात्रों का कार्य है अपनी योग्यताओं/क्षमताओं का विकास कर जीवन को उन्नतशील बनाकर समाज व राष्ट्र के नव निर्माण में अपना योगदान करना, न कि किसी राजनीतिक दल के मोहरे बनकर राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में शामिल होना। राष्ट्रपति के विरोध का कारण जब जानने की कोशिश की गई, तो वहाँ (अलीगढ मुस्लिम विद्यालय) के मुस्लिम छात्र संघ के महासचिव ने जो कारण बताया, वो किसी भी बुद्धिजीवी की समझ से परे है। महासचिव का तर्क था कि उनका विरोध राष्ट्रपति का नहीं, अपितु उस पद पर बैठे व्यक्ति रामनाथ कोविन्द का है, जिनकी सोच पूर्व में संघी की रही है। कांग्रेस के नेता कपिल सिब्बल ने कहा कि राष्ट्रपति पद का सम्मान सबको करना चाहिए और उस पद पर बैठे व्यक्ति को भी पद की गरिमा का ध्यान रखना चाहिए। परन्तु सिब्बल महोदय यह नहीं बता पाए या बताना भूल गए कि राष्ट्रपति महोदय ने किस तरह पद की गरिमा का ध्यान नहीं रखा? राजनीतिज्ञों के इस प्रकार के बयान कहीं न कहीं महामहिम के विरोध में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्रों के नकारात्मक अभियान को हवा देने का कार्य करते हैं। जो छात्र ७५ प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता के विरोध में हड़ताल, धरने, प्रदर्शन या नारेबाजी कर रहे हैं और उनके इस कदम का समर्थन जो राजनेता या विश्वविद्यालय के शिक्षक कर रहें हैं, उनके पास इस प्रश्न का कोई तार्किक उत्तर नहीं है कि छात्र विश्वविद्यालय की कक्षाओं में नियमित रूप से जब उपस्थित ही नहीं रहना चाहते, तो फिर विश्वविद्यालय में प्रवेश क्या लोकतन्त्र की आड़ लेकर देशविरोधी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए लेते हैं। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा प्राप्ति के केन्द्र होते हैं, उन्हें राजनीति का व राष्ट्रविरोधी गतिविधियों का अखाड़ा बनाना किसी देशद्रोह से कम नहीं है। इस प्रकार की गतिविधियाँ हमारी शिक्षा व्यवस्था के साथ बच्चों की परवरिश पर भी सवाल खड़े करती हैं। इस प्रकार की गतिविधियाँ हमारी दोषपूर्ण शिक्षाप्रणाली की मिसाल बनती हैं। महात्मा गांधी ने शिक्षा में धार्मिक और नैतिक शिक्षा के अभाव की ओर संकेत करते हुए कहा था कि शिक्षा से नैतिक शिक्षा के अभाव को दूर करते हुए उच्चतर परंपराओं से संपन्न अध्यापक वर्ग की आवश्यकता है। जो भी अध्यापक छात्रों के तथाकथित आंदोलनों धरनों और प्रदर्शनों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष नैतिक अथवा राजनैतिक समर्थन देते हैं, वे कहीं न कहीं अध्यापन जैसे पावन कार्य के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। उनमें भी कहीं न कहीं अध्यापन के आवश्यक गुणों का अभाव है, जिसके कारण वे छात्रों में नैतिकता के, सच्चारित्र्य के, मानवता के, सदाचार के, शिष्टाचार के व देशभक्ति के गुणों का विकास करने में असफल हो रहे हैं। जब हम अपने छात्रों में उपरोक्त गुणों का विकास ही नहीं कर पाएंगे, तो शिक्षा पर केन्द्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा खर्च किए जा रहे अरबों रुपये और संसाधनों का कोई औचित्य नहीं है। जे०एन०यू० और ए०एम०यू० हमेशा किसी न किसी कारण से चर्चा का

विषय बनते रहे हैं। इनमें पढ़ने वाले छात्रों को केन्द्र सरकार द्वारा नाममात्र के शुल्क से पढ़ने- पढ़ाने के हर संसाधन प्राप्त कराए जाते हैं लेकिन उस के बदले में छात्र क्या करते हैं! कभी संसद पर हमले के दोषी आतंकी अफजल गुरु का स्मृति दिवस मनाते हैं। कभी भारत विरोधी नारे लगाते हैं। कभी ७५ प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता के विरोध में धरने प्रदर्शन करते हैं। राष्ट्रपति पदेन विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति होते हैं तथा छात्रों को दी जाने वाली उपाधि पर उन्हीं के द्वारा मनोनीत अथवा नियुक्त राज्यपाल के हस्ताक्षर होते हैं। उन महामहिम के आगमन का विरोध छात्रों की अपरिपक्व मानसिकता को दर्शाता है, जिन्होंने अपने छात्र जीवन में अपने बडे बुजुर्गों का सम्मान करना नहीं सीखा आगे चलकर वे कैसे समाज व राष्ट्र निर्माण में सहायक बनेंगे, यह कहना कठिन है। जो शिक्षा युवाओं को विद्रोह के रास्ते पर ले जाए, जो शिक्षा केवल अधिकार की बात करे और कर्त्तव्य को नजरअंदाज करे, जो शिक्षा नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, मानवता, और सच्चारित्र्य से हीन हो, वो शिक्षा समाज व राष्ट्र के लिए वरदान नहीं, अपितु अभिशाप है और दुर्भाग्य से हमारी वर्तमान शिक्षाप्रणाली इस अभिशाप से बुरी तरह ग्रस्त है। दोनों ही प्रकरण हमारी वर्तमान शिक्षाप्रणाली पर तो सवाल उठाते ही हैं, इसके साथ-साथ इन विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षकों की क्षमता और निष्ठा दोनों पर भी सवाल उठाते हैं, जब शिक्षक को शिक्षा देकर विद्यार्थी के निर्माण का दायित्व मिला है, तो क्या कारण है कि वो छात्रों के तथाकथित संवैधानिक अधिकारों के नाम पर राष्ट्रविरोधी आंदोलन को तो हवा देते हैं लेकिन संवैधानिक कर्त्तव्यों का पाठ नहीं पढाया जाता आखिर अधिकारों के साथ- साथ कर्त्तव्यों का पाठ कौन पढ़ाएगा? संस्कारहीनता अनुशासनहीनता की जननी है और अनुशासनहीनता अव्यवस्था और अराजकता की जननी है। ७५ प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता और विद्यालय के दीक्षान्त समारोह में महामहिम के आगमन का छात्रों द्वारा विरोध करना संस्कारहीनता और अनुशासनहीनता को तो दर्शाता ही है, इसके साथ-साथ शिक्षकों और शिक्षा के गिरते स्तर को भी सिद्ध करता है। लोकतन्त्र के नाम पर विद्या के केंद्रों की पावनता को भंग करने की इजाजत किसी को नहीं होनी चाहिए। लोकतन्त्र के नाम पर वन्देमातरम का विरोध लोकतन्त्र के नाम पर तिरंगा ध्वज फहराने पर चन्दन गुप्ता की हत्या, लोकतन्त्र के नाम पर जम्मू कश्मीर में पत्थरबाजों की तरफदारी और लोकतन्त्र के नाम पर राष्ट्र- विरोधी हरकतों को अंजाम देना प्रथम तो लोकतंत्र नहीं हो सकता और यदि यह लोकतन्त्र मान भी लिया जाए, तो वह देशद्रोहियों की राष्ट्रद्रोही हरकतों को अंजाम देने का ओछा हथकण्डा है। आचार्य भर्तृहरि ने नीतिशतकम् में लिखा है-

तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरू।

अर्थात् हे मनुष्य! तू सभी विषयों को त्याग कर केवल और केवल विद्या पर अधिकार पाने का तन-मन से पुरुषार्थ कर। **विद्ययाऽमृतमश्नुते** अर्थात् विद्या से मनुष्य को अमृत की प्राप्ति होती है। विद्या प्राप्ति के लिए आने वाले छात्र यदि राष्ट्रविरोधी राजनीति के औजार बनकर आंदोलन और धरने प्रदर्शनों की राह पकड़ते हैं, तो उससे देश की सांस्कृतिक विरासत और देश की एकता खतरे में पड़ सकती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के दसवें नियम में लिखा है कि सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें। सामाजिक सार्वजनिक हितों से संबंधित नियमों का पालन करने में हमें अपनी तथाकथित स्वतन्त्रता का राग नहीं अलापना चाहिए। निजी स्वतंत्रता राष्ट्र व समाज के हितों से उपर नहीं हो सकती। अपने निजी हितों से संबंधित नियमों का पालन करने में हम स्वतन्त्र हैं। महर्षि का हम सब को यह स्पष्ट संदेश है कि राष्ट्रीय और सामाजिक स्वतन्त्रता व उसके हित हमारी वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथ व्यैक्तिक हितों से बहुत ऊपर है और सदा उसे ऊपर ही रखना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य है इस बात को न ता हमारे नेता, न ही छात्र और न ही शिक्षक समझ पा रहे हैं। जिसके दुष्परिणाम हमारे सामने नई-नई दुर्घटनाओं के रूप में आ रहे हैं। किसी नीतिकार ने ठीक ही लिखा है-

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनात्।
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।।

अर्थात्- बुरी मन्त्रणा (सलाह) से राजा का, विषयों के संग से यति (संन्यासी) का, पुत्र का नाश आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार करने से, स्वाध्याय न करने से ब्राह्मण का, कुपुत्र से कुल का और शील (चरित्र) का नाश खल (दुष्ट) की संगति से हो जाता है। आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देकर अध्ययन करने वाले छात्रों को राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों की ओर धकेलना अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए ७५ प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता के विरुद्ध छात्रों को भड़काना और अकारण महामहिम की विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में सहभागिता के विरुद्ध छात्रों को विरोध प्रदर्शन के लिए छात्रों को गोलबन्द करना आदि सब राष्ट्रविरोधी और शिक्षाविरोधी हरकतें हैं, जिन पर अविलम्ब प्रभावी अंकुश लगाने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों को उपरोक्त हरकतों के लिए उकसाने का जो काम कर रहे हैं, ऐसे आवांछनीय तत्वों की पहचान कर उनके विरुद्ध सख्त से सख्त कार्यवाही की जानी चाहिए। जिनके लिए केवल अपने अधिकार ही सर्वोपरि हैं, उनके लिए कर्त्तव्यों के कोई अर्थ नहीं रह जाते और जिनकी नजर में कर्त्तव्यों की अहमियत नहीं होती, ऐसे अवांछनीय तथाकथित आंदोलनकारी और प्रदर्शनकारी विश्वासघात की किसी भी हद तक जा सकते हैं। यदि इस तरह की गतिविधियों का सामाजिक और नैतिक व राजनीतिक तरीके से विरोध नहीं किया तो इस तरह की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि होगी, जिन्हें रोकना अत्यन्त कठिन होगा। हमारे राजनीतिक दलों को चाहिए कि वे क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए अपने आपको ऐसे किसी भी तथाकथित आंदोलनों का, धरनों का और प्रदर्शनों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सा न बनने दें, जिनसे लेशमात्र भी राष्ट्रद्रोह की गन्ध आती हो। हम सब को मिलकर राष्ट्रविरोधी बहने वाली हर लहर का डटकर विरोध करते हुए उसे समूल नष्ट करने का पुरुषार्थ करना चाहिए न कि उसे हवा देकर विषवृक्ष बनाने का काम न करें। वेद का संदेश है- **राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्।**

अर्थात् हम ऐसा पुरुषार्थ करें, जिससे राष्ट्र ध्रुव (स्थिरता) को धारण करें।

❑❑

दयानन्द सन्देश के स्वामित्व आदि का विवरण

१.	प्रकाशन स्थान	:-	४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-११०००६
२.	प्रकाशन अवधि	:-	मासिक
३.	मुद्रक का नाम	:-	तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-६
४.	प्रकाशक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०००७
५.	सम्पादक	:-	धर्मपाल आर्य
	क्या भारतीय है?	:-	हाँ
	पता	:-	२ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०००७
६.	स्वामित्व	:-	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-११०००६

मैं (धर्मपाल आर्य) एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखा समस्त विवरण सत्य है।

मार्च, २०१८

धर्मपाल आर्य
(प्रकाशक/सम्पादक)

जब सत्य की जीत हुई

(राजेशार्य आट्टा, मो०ः-09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! स्वामी श्रद्धानन्द ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' में लिखा है कि जब वे काशी में रह रहे थे, तो वहाँ के पण्डितों ने तेजस्वी व शास्त्रार्थ विजेता संन्यासी ऋषि दयानन्द को नास्तिक जादूगर प्रचारित कर रखा था। लोगों को उससे दूर रखने के लिए उसके दर्शन व प्रवचन श्रवण करने से पाप लगने का डर दिखाया। यही अवस्था लगभग पूरे देश में थी। स्वार्थी पण्डितों के मना करने पर भी सैकड़ों लोग उस जादूगर के पास जाते थे। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही उससे घृणा करने वाले लोग उसका प्रवचन सुन लेने मात्र से उसके हो जाते थे। क्योंकि निःस्वार्थ भाव से जग कल्याण में लगे उस संन्यासी के साथ सत्य और ईश्वर था। इन्हीं के आश्रय पर वह स्वार्थी व अज्ञानियों की धूर्तता का खण्डन करता हुआ समस्त देश में निर्भीक होकर विचरता था।

जब (१८६७ ई० में) ऋषि दयानन्द मूर्तिपूजा, गंगास्नान से मुक्ति आदि पाखण्डों का खण्डन करते हुए हरिद्वार के कुम्भ के मेले में गर्जन कर रहे थे, तो यह समाचार समस्त देश में फैल गया था। इसे सुनकर अन्य पण्डितों की तरह क्रोधित हुए पं० बस्तीराम भी ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने हरिद्वार पहुँचे। झज्जर के ठाकुर सुल्तान सिंह भी अपने काफिले (लगभग ५०० आदमियों) के साथ स्वामी जी के पास पहुँचे। उधर से एक काफिला गुसाईं लाल गिरि का भी शास्त्रार्थ करने पहुँचा। वे सभी अपने ज्ञान व सिद्धि की बड़ी डींग मार रहे थे, पर स्वामी जी से कुछ ही देर के प्रश्नोत्तर से पराजित होकर गुसाईं लाल गिरि यह कहकर चल पड़ा- यह आदमी नहीं, यह तो कोई हव्वा है।

पं० बस्तीराम का तो इतने से ही शंका-समाधान हो गया। दूसरे भी वहीं यज्ञोपवीत लेकर वैदिकधर्मी बन गये। पं० बस्तीराम तो जीवनभर (१९५७ ई० तक) वैदिक प्रचार ही करते रहे। कुछ ऐसा ही हुआ स्वामी दर्शनानन्दजी के साथ भी। जब वे वेदान्ती साधु नित्यानन्द के रूप में थे (सम्भवतः १८७७-७८ ई०), तो नवीन वेदान्तियों के जीव-ब्रह्म की एकरूपता के सिद्धान्त का खण्डन सुनकर ये स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने गये। पर जब ऋषि के विचार सुने, तो उन्हें शास्त्रार्थ की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। ऋषि के व्याख्यान सुनने की चाहना और भड़क उठी। बस यहीं से वे वैदिकधर्म के रंग में रंग गये और मृत्यु पर्यन्त (६ अप्रैल, १९१३) वे श्रद्धापूर्वक वैदिकमत के प्रचार में लगे रहे। कोई अपना या विरोधी उनके इस रंग को नहीं मिटा सका।

अमृतसर के पादरी खड़गसिंह भी ईसाईमत की आलोचना से उत्तेजित होकर ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने गये थे पर ऋषि की दिव्यमूर्ति के दर्शन किए, कुछ विचार सुने और तत्काल वैदिकधर्म की दीक्षा ले ली।

नवम्बर, १८७६ में ऋषि दयानन्द का मुरादाबाद में आगमन हुआ। जिस रास्ते से उनकी गाड़ी (बग्घी) जानी थी, लोग उस रास्ते में खड़े हो गये। विद्यालय के छात्र व अध्यापक भी उनके दिव्य व चमकते हुए चेहरे को देखकर बहुत प्रभावित हुए। उनके सायंकाल के समय व्याख्यान होने की घोषणा भी हुई। बहुत से विद्यार्थी व्याख्यान सुनने जाने को उत्सुक हुए, पर अंग्रेजी स्कूल के एक संस्कृत अध्यापक ने अपने स्कूल के बच्चों को कहा कि स्वामी जी अधर्म की बात सुनाया करते हैं, उनके सुनने से पाप लगेगा, इसलिए उनके व्याख्यान में किसी को नहीं जाना चाहिए। इस पाप के भय से अनेक विद्यार्थी रुक गये। उनमें से एक था नारायण प्रसाद।

मुरादाबाद में नौकरी करते समय महाशय हरसहाय सिंह ने नारायण प्रसाद को सत्यार्थ प्रकाश दी, जिसे

पढ़कर उन्हें पछतावा हुआ कि किस प्रकार वे एक अध्यापक की धूर्तता में फँसकर ऋषि के उपदेशामृत से वंचित रह गये। अब वे ऋषि- सिद्धान्तों के प्रति समर्पित होकर १८९१ ई० में आर्यसमाज के सदस्य बन गये। अपने त्याग व तप से इसी नारायण प्रसाद ने महात्मा नारायण स्वामी बन कर मृत्यु (१५ अक्तूबर, १९४७) पर्यन्त आर्यसमाज का नेतृत्व किया।

आज विद्यालय की छुट्टी है। आर्यसमाज मुरादाबाद के पुस्तकालय से एक छोटी पुस्तक लेकर पढ़ने बैठा पौराणिक परिवार का बालक बिहारी लाल। पढ़ना शुरू ही किया था कि आँखें चमक उठीं। माथा ठनका और साथ ही हिल उठा मस्तिष्क के विचार सागर का जल। स्वामी दर्शनानन्द का मूर्तिपूजा पर लिखा कोई ट्रैक्ट है यह। अभी तो एक पृष्ठ भी पूरा नहीं पढ़ा और हालत यह हो गई कि आँखें खुली की खुली रह गईं। विचार सागर का जल अब हिलोरें लेने लगा। पुस्तक का अन्तिम पृष्ठ भी पढ़कर समाप्त कर दिया। कुछ देर विचारमग्न रहने के बाद उस युवक ने मूर्ति -पूजा सम्बन्धी सभी पुस्तकें निकाल कर पढ़ना शुरू कर दिया। पुस्तकालय का कार्य यही देखता है। अतः किसी की रोक- टोक न होने से इसने पढ़ने में ऐसी डुबकी लगाई कि इसे दिन बीतने और रात होने का भी भान न रहा। बाहर निकला, तो प्रभात का सूर्य चमकता मिला। उसके मस्तिष्क में भी ज्ञान का सूर्य चमक रहा था। नित्यकर्म से निवृत्त हो वही ट्रैक्ट उठाकर वह युवक अपने गाँव पागबड़ा में अपने गुरु से मिलने चल पड़ा।

गुरु जी को प्रणाम कर कहा- गुरु जी, इस पुस्तक को पढ़कर मेरे मस्तिष्क में अनेक शंकाएँ उठ रही हैं। उनका समाधान जानने के लिए आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। "देखूँ तो बेटा, कौन सी पुस्तक है यह।"

पुस्तक हाथ में लेते ही गुरुजी का माथा ठनका। अभी लेखक (स्वामी दर्शनानन्द) का नाम ही देखा था कि बोल पड़े- यह आर्यो की पुस्तक है, सब कुछ झूठा है इसमें। "पर गुरुजी पढ़कर तो देखिये।"

न बेटा इसको पढ़ने से बुद्धि बिगड़ जाती है। तूने पढ़ी क्यों थी यह पुस्तक?

'क्या हुआ गुरु जी पढ़ना कोई गुनाह तो नहीं है।'

देखो ना कैसी बुद्धि बिगड़ गई तेरी। यह नास्तिकों की पुस्तक है। बेटा! आर्य तो ईसाई होते हैं ईसाई। ना वेदों को मानें ना शास्त्रों को।'

नहीं गुरु जी, आपको भ्रम हो गया है। आर्यो का तो धर्मग्रन्थ ही वेद है। यदि मेरी शंकाओं का समाधान नहीं किया तो मैं आर्यसमाजी बन गया गुरु जी।

नहीं, शंका वंका कुछ नहीं। धर्म की बातों में शंका नहीं करते जैसा गुरु का आदेश हो पालन करते हैं।

गुरुजी, मेरी तो बुद्धि खुल गई। मेरी प्रार्थना है कि इसको पढ़कर आप भी अपना जीवन सफल कर लें। गुरुचरणों में शीश नवाकर वह युवक पुनः उसी आर्यसमाज में आ गया। सत्यार्थप्रकाश को पढ़ते ही उसे एक मार्ग मिला और वह उस पर चलकर आर्यसमाज का शास्त्रार्थ महारथी पं० बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ कहलाया। दीर्घकाल (१८९१ई०-१९८६ई०) तक यह आर्यवीर शास्त्रार्थ समर में गरजता रहा। इसी वीर ने पौराणिक माधवाचार्य से लिखित माफी मँगवाई थी।

चित्रकूट में एक नवीन वेदान्ती साधु शीत ज्वर हो जाने के कारण रोग ग्रस्त हो गये, तो एक आर्य- समाजी ने बड़ी लग्न से उनकी सेवा की व उपचार करवाया। इससे वे कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गये। जब वे वहाँ से चलने लगे, तो आर्यसमाजी सेवक ने रेशमी कपड़े में लपेट कर एक पुस्तक उन्हें भेंट की और निवेदन किया कि वह उस पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़ें। स्वामी जी ने अवकाश मिलने पर जब कपड़े में से पुस्तक निकाली, तो सत्यार्थ प्रकाश निकली। पुस्तक देखते ही उन्हें क्रोध आ गया और पुस्तक दूर फेंक दी। कुछ देर में उनका क्रोध शान्त हुआ, तो उन्हें उस सेवक की याद आई, जिसने बिना किसी स्वार्थ के उनकी जी जान से सेवा की थी। उन्हें लगा कि उस भक्त व सेवक का अनुरोध पूरा करना चाहिये। पुस्तक पढ़ने में नुकसान ही क्या है, यह सोचकर उन्होंने पूरा सत्यार्थ

प्रकाश पढ़ डाला। सत्यार्थ प्रकाश का पढ़ना था कि वह साधु सदा-सर्वदा के लिए ऋषि दयानन्द का हो गया। स्वामी सर्वदानन्द बनकर वैदिकधर्म के प्रचार में जुट गया। महात्मा हंसराज जैसे महान नेता स्वामी सर्वदानन्द जी के चरणों में नतमस्तक होते थे। इनके द्वारा स्थापित स्वामी विरजानन्द साधु आश्रम (मथुरा - अलीगढ़ - हरदुआगंज) ने आर्यसमाज को स्वामी ध्रुवानन्द, पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु व पण्डित शिवकुमार शास्त्री (सांसद) जैसे महान् विद्वान् प्रदान किये। इस संन्यासी ने जीवन भर आर्यसमाज की सेवा की।

मुंशीराम के पिता नानकचन्द अपने नास्तिक बेटे के दुर्व्यसन छुड़ाने की इच्छा से उन्हें ऋषि दयानन्द के प्रवचन सुनने के लिए ले गये। तब (१८७९ ई०) स्वामी जी बरेली में थे और पुलिस अधिकारी होने के कारण शान्ति व्यवस्था करने में नानकचन्द जी की ड्यूटी लगी हुई थी। मुंशीराम अंग्रेजी पढ़े हुए थे। अतः संस्कृत जानने वाले साधु से उन्हें कोई बुद्धि की बात सुनने की आशा तो नहीं थी, पर पिता का आदेश मानकर अनमने से चले गये। वहाँ जाकर विचित्र बात यह हुई कि जब ऋषि ने मूर्तिपूजा और अवतारवाद का खण्डन किया, तो जहाँ मुंशीराम की श्रद्धा बढ़ने लगी, वहीं पिताजी ने व्याख्यान में आना बन्द कर दिया। मुंशीराम सबसे पहले आता और सबसे बाद में जाता। यहाँ तक कि २५ से २७ अगस्त तक ऋषि के पादरी स्काट के साथ हुए तीन शास्त्रार्थों में पहले दो के लेखकों में मुंशीराम भी थे। तीसरे दिन वे बीमार होने के कारण नहीं जा पाये। दस दिन (१५-२५ अगस्त) तक ऋषि का सत्संग किया। इस सत्संग के संस्कार उन्हें दुर्व्यसनों की दलदल से निकालने में सहयोगी हुए।

१८८४ ई० के अन्त में दुर्व्यसनों से मुक्ति पाकर मुंशीराम आर्यसमाज के सदस्य बन गये। पिताजी इस बात से तो सन्तुष्ट थे कि पुत्र के दुर्व्यसन छूट गए पर वे उनके आर्यसमाजी बनने से नाराज हुए। एकादशी के दान का संकल्प न पढ़ने पर पिताजी ने मुंशीराम को कुछ कटु वचन कहे। मुंशीराम तो वकालत-परीक्षा की तैयारी करने लाहौर चले गये, उनकी पंच महायज्ञ विधि और सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकें घर पर ही थीं। पिताजी यद्यपि उन्हें नास्तिकपन की पुस्तकें मानते थे, फिर भी उन्होंने पं० काशीराम से उन्हें पढ़कर सुनाने के लिए कहा। पण्डित जी ने ब्रह्मयज्ञ का पाठ अर्थ सहित आरम्भ किया। ज्यों- ज्यों पिता जी सुनते, उनकी श्रद्धा बढ़ती जाती। जब पण्डित जी ने सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम समुल्लास सुनाया, तब पिताजी ने कहा- "पण्डित जी! हम तो अविद्या में ही पड़े रहे, हमारा मोक्ष कैसे होगा? हमने तो निरर्थक क्रियाएँ ही कीं, अब से वैदिक सन्ध्या करेंगे।" बस फिर क्या था, पिताजी ने वेदमन्त्र तथा उनके अर्थ कण्ठ करना आरम्भ कर दिया। अब वैदिक सन्ध्या और पंचायत अर्थात् पंच देव मूर्तियों की पूजा साथ-साथ होने लगी।

जब मुंशीराम जी जालन्धर गये, तो उनके पिताजी को भी पेंशन लेने वहाँ जाना था। रात्रि को आर्यसमाज में सत्संग हो रहा था। मुंशीराम जी किसी आदमी को स्टेशन पर बिठाकर सत्संग में चले गये। अपना उपदेश समाप्त करते ही उन्हें पिताजी के आने की सूचना मिली। वे तत्काल भागे गये। पिताजी को नमस्कार करके चरण छूए, तो पिताजी ने पूछा- 'क्या समाज का अधिवेशन समाप्त हो गया?' मुंशीराम जी ने संकोच से कहा- 'केवल भजन और आरती रह गयी थी, आपका आगमन सुनकर भाग आया।' पिताजी ने बड़े प्रेम भरे शब्दों में कहा- ''क्या जल्दी थी, समाज का अधिवेशन समाप्त करके ही आना चाहिए था।" मुंशीराम जी हैरान थे कि कहाँ तो पिताजी मेरे तलवन से चलते समय मूर्ति के आगे चढ़ावा चढ़ाने से इन्कार करने पर इतने रुष्ट थे और कहाँ यह कृपा और प्रेम! सम्भवतः पिता और आचार्य दयानन्द के प्रेम ने ही मुंशीराम को महात्मा मुंशीराम व स्वामी श्रद्धानन्द बनने की प्रेरणा दी हो। गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली, दलितोद्धार, शुद्धि आन्दोलन आदि के प्रति समर्पण और उसी के लिए बलिदान (२३ दिसम्बर

१९२६) देने का उच्च भाव सौभाग्यशालियों को ही मिलता है।

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने लिखा है कि लोकमान्य तिलक के गुरु श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ऋषि दयानन्द के घोर विरोधी थे। धाराशिव निवासी श्री निवास राव जी शास्त्री जी के बड़े भक्त थे। उनके प्रभाव से ही वे भी ऋषि दयानन्द से घृणा करते थे व उन्हें असत्य पुरुष तथा हिन्दू धर्म को डुबाने वाला समझते थे। श्री निवासराव जी के मित्र महाशय गोविन्द सिंह जी ने इन्हें ऋषि दयानन्द की पुस्तकें पढ़ने को दीं। ये सब इनके पास वैसे ही पड़ी रहीं। उन्हें हाथ भी न लगाया। उन्हें देखने को भी इनका जी नहीं करता था।

एक बार श्रीनिवास राव पूना में विष्णु शास्त्री जी के पास बैठे हुए थे कि पलटन के एक सैनिक ने आकर उन्हें नमस्ते कहा। 'नमस्ते' शब्द सुनते ही शास्त्री जी ने क्रुद्ध होकर उन्हें तथा स्वामी दयानन्द को बहुत गालियाँ दीं। सैनिक गालियाँ सुनता रहा और शान्ति से उनका खण्डन करते हुए ऋषि दयानन्द के विचारों का ऐसी योग्यता से मण्डन करता रहा कि शास्त्री जी को मौन ही रहना पड़ा।

इस घटना के बाद श्री निवासराव धाराशिव लौटे और ऋषिकृत पुस्तकों को मन लगाकर पढ़ा। महीनों तक अध्ययन, मनन व चिन्तन किया। इससे इनका दृढ़ निश्चय हो गया कि 'स्वामी दयानन्द एक महान ऋषि, बड़े विद्वान्, आप्त पुरुष और निष्पक्ष व्यक्ति थे। विष्णु शास्त्री कपटी, हठी व पक्षपाती है।' अब तो उन्हें विष्णु शास्त्री के झूठ से घृणा हो गई और सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रचार की ऐसी लग्न लगी कि ऋषि की 'पूना प्रवचन' (उपदेश मञ्जरी) पुस्तक की खोज में कम से कम ५० बार पूना गये। धाराशिव से पूना जाने में तब (१८९० ई०) कम से कम २० घण्टे लगते थे। अन्त में पूना प्रवचन खोज कर ही दम लिया। महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य बाल ब्रह्मचारी नरदेव जी वेदतीर्थ श्री निवासराव जी के ही सुपुत्र थे।

आर्यसमाज के आरम्भिक काल के सेवकों में सरदार गुरबख्श सिंह का नाम उल्लेखनीय है। स्वाध्याय प्रेमी होने के कारण ये 'पं० गुरुदत्त द्वितीय' कहलाते थे। जब इन्होंने आर्यसमाज में प्रवेश किया, तो इनकी धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुर देवी जी ने इनका बड़ा विरोध किया। ऋषि ग्रन्थ देखकर ये बड़ी क्रुद्ध होतीं। इन्होंने कई बार सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ फाड़े। पति के धैर्य और नम्रता का देवी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये भी उनके साथ आर्यसमाज के सत्संग में जाने लगीं।

सरदार जी ने इन्हें हिन्दी पढ़ाई। इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश आदि का अध्ययन किया। फिर तो इन्हें वेद-प्रचार की ऐसी धुन लगी कि सब दंग रह जाते। पहले भजनों के द्वारा प्रचार करती थीं, फिर व्याख्यान देने लगीं। गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव में भी इनके प्रचार होने लगे। पति के निधन के बाद तो ठाकुर देवी विरक्त होकर देहरादून के समीप आश्रम बनाकर एक कुटिया में रहने लगीं।

प्रिय पाठक वृन्द! इतिहास की इन कुछ घटनाओं में हमने देखा कि यद्यपि वैदिक सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक व सत्य पर आधारित हैं, तथापि सामने (विपरीत विचारधारा) वाले से इन्हें मनवाने में व्यवहार की मुख्य भूमिका रही है। अब हम इतिहास की एक और घटना देखते हैं-

लगभग १५० वर्ष पहले की बात है। काशी नगरी के प्रतिष्ठित साहित्य शिरोमणि पण्डित नीलकण्ठ शास्त्री एक दिन तेज गति से अपनी पीठिका की ओर जा रहे थे। रास्ते में उनके परिचित भंगी का बच्चा खड़ा चीख रहा था। एक इक्के का घोड़ा बेकाबू होकर दौड़ने लगा। लोग सहमे हुए सड़क के किनारे हो गये। बच्चा माँ-बाप को न पाकर रोता हुआ सड़क के बीच आ गया और इतने में घोड़ा भी उसके पास ही पहुँच गया। नीलकण्ठ शास्त्री ने दयार्द्र होकर बच्चे को उठाना चाहा, किन्तु भंगी के बच्चे को छूने से धर्मभ्रष्ट होने के डर से हिचकिचाकर पीछे हट गये। इतने में एक पादरी

शेष पृष्ठ १९ पर

महर्षि दयानन्द सरस्वती का सत्योपदेश

(संकलनकर्ता-भावेश मेरजा, भरुच मो0:-09879528247)

(बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय संगृहीत एवं पण्डित घासीराम जी रचित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित ग्रन्थ से संकलित उपदेश।)

१. भारत में यज्ञ की प्रथा उठ जाने के पश्चात् मूर्तिपूजा चल पड़ी और लोगों का इस प्रकार विश्वास हो गया कि अग्नि, वायु आदि का एक-एक अधिष्ठात्री देवता है, परन्तु यह कपोल-कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

२. मैक्समूलर को ईसाईमत का बहुत पक्षपात है। यदि वेदों का ऐसा अनर्थ किया है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि उसका हार्दिक अभिप्राय यह है कि भारतवासी वेदों के ऐसे अर्थों को देख कर भ्रम में पड़ जावें और वेदों को छोड़ कर बाइबिल को ग्रहण कर लें। अतः उसका अनुवाद प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

३. यदि ब्राह्मण वेदों को कण्ठस्थ करके सुरक्षित न रखते, तो वेद कहाँ रहते?

४. हम किसी को शिष्य नहीं बनाते हैं और जो हमारे सिद्धान्तों को मानता है, वही हमारा सेवक व शिष्य है और जो लोग हमारे कार्य में सहायक होते हैं, वही हमारे भाई हैं।

५. हमारे पास मन्त्र देने की कोई फुंकनी नही है, जिससे हम किसी के कान में मन्त्र फूंके और मन्त्र तो सारे वेद में हैं ही, हम क्या मन्त्र देंगे?

६. (स्त्रियों को उपदेश) पति-सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है और अपने पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्तव्य है। मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना और साधु-संन्यासियों के दर्शनों के लिए इधर-उधर घूमना, स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री-जाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन ही है।

७. उपासना काल में उपासक ईश्वर के सत्संग में मग्न होते हैं। ऐसे समय मे कोई कितना ही बड़ा मनुष्य आए उपासकों को खड़ा न होना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है। ऐसा करने से (उपासना के समय खड़ा होने से) उपासना धर्म का निरादर होता है।

८. हम केवल यह चाहते हैं कि लोग वेदों की आज्ञाओं का पालन करें और केवल निराकार, अद्वितीय परमेश्वर की पूजा और उपासना करें, शुभ गुणों को ग्रहण और अवगुणों को त्याग दें।

९. अपनी भलाई का काम तो गधे ओर अन्य पशु-पक्षी भी करते हैं। मनुष्यता तो इसी में है कि वह दूसरों का उपकार करें।

१०. जीव अपने ही किए हुए कर्मो का फल भोग सकता है। इसलिए पुत्र-पौत्रादि का किया हुआ श्राद्ध-तर्पणादि परलोकगत जीव के लिए वृथा है।

११. धर्मपूर्वक उपायों से अपनी उन्नति अर्थात् सुख की वृद्धि करना 'स्वार्थ' कहलाता है, परन्तु इस समय तो लोग येन-केन-प्रकारेण धर्माधर्म व विवेक- रहित उपायों से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और परहानि व परदुःख का कुछ भी विचार नहीं करते, इस प्रकार स्वार्थान्ध हैं। परार्थ वा परोपकार वह है, जिसके आचरण से मनुष्यों के दुःख की निवृत्ति हो।

१२. न्यायप्रियता, स्वार्थ-त्याग, पराये हित में योग देना आदि उत्तम गुण सत्पुरुषों की कसौटी है। ऐसे पुरुष अपने उत्तम गुण और स्वभाव से पहचाने जाते हैं। वे योगाभ्यास, परोपकार, उदारता, न्याय-कर्तृत्व, ईश्वर-भक्ति और दयालुता आदि गुणों से युक्त होते हैं।

१३. इतिहास में महाभारत और वाल्मीकीय रामायण, मनुस्मृति तथा सूत्रग्रन्थों को देखिए, वेदों का भाष्य देखिए। फिर आपको प्रकट हो जाएगा कि मूर्तिपूजा निरी गप्प है।

१४. क्रियात्मक जीवन ही जीवन है। वेद-विहित शुभ कर्मो का करना ही निवृत्ति-मार्ग है। वही मनुष्य जीवित कहलाने का अधिकारी है जो अपने जीवन को

लोकहित के कार्यों में लगाता है।

१५. सांख्यकर्त्ता (महर्षि कपिल) अनीश्वरवादी नहीं हैं। लोग ऋषिकृत टीकाओं को छोड़कर और भ्रष्ट लोगों की टीकाओं को पढ़कर ऐसा कहने लगे हैं। भागुरि ऋषि की टीका को पढ़ो, तुम्हारा सन्देह दूर हो जाएगा। **'ईश्वराऽसिद्धेः'** सूत्र पूर्वपक्ष का है। आगे उसका उत्तर दिया गया है। यदि सांख्यकर्त्ता नास्तिक होता, तो वह पुनर्जन्म, वेद, परलोक और आत्मा को क्यों मानता?

१६. कोई दर्शन दूसरे दर्शन का विरोधी नहीं है। छः कारणों से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है- न्याय दर्शन परमाणुओं का, मीमांसा दर्शन कर्म का, सांख्य दर्शन तत्वों के मेल का, योग दर्शन ज्ञान-विचार का, वैशेषिक दर्शन काल का और वेदान्त दर्शन परमात्मा का वर्णन करता है।

१७. यदि एक मनुष्य केवल चने चबाकर रहे और ब्रह्मचर्य का पालन करे, तो वह मांसाहारियों से कहीं अधिक बलिष्ठ हो सकता है।

१८. यतियों के लिए संग्रह करने का निषेध है, परोपकार में व्यय करने के लिए धन लेना पाप नहीं है।

१९. राजाओं (शासकों) के लिए ब्रह्मचर्य का पालन नितान्त आवश्यक है। राजाओं को चाहिए कि कानून बनाकर लोगों को ब्रह्मचर्य पालन पर बाध्य करें और बालविवाह को रोकें। मनुष्यों को सदाचारी और वैदिक धर्मानुयायी होना चाहिए।

२०. भारत में आजकल जहाँ-तहाँ ब्राह्मण-श्रेणी ही पाचक का कार्य करती दिखाई दे रही है। प्राचीन भारत में ऐसा नहीं था। ब्राह्मण का कार्य रसोई बनाना नहीं है। यदि ऐसा होता, तो अज्ञात वास के समय विराट नगर में भीमसेन प्रधान सूपकार कैसे बन सकते थे?

२१. यह बात नहीं थी कि पहले समय में वर्ण जन्मगत न हो। जन्मगत तो था, परन्तु निम्नस्थ जाति गुण-कर्म से उच्चतर और उच्चतर कर्मदोष से निम्नतर हो जाती थी।

२२. वेद स्वतः प्रमाण हैं। जैसे सूर्य का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए उसे दीपक से दिखाने की आवश्यकता नहीं होती, ऐसे ही वेद को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

२३. विवाह में इतना धन व्यय करना अनुचित है। अकर्मण्य, भोजन लोलुप ब्राह्मणों को खिलाने से कुछ इष्ट नहीं होता। पुलिसवालों को खिलाने से फल होता है। वे रात्रि में आपके घरों की रक्षा करते हैं।

२४. ऋषि-प्रणाली का अनुसरण करो, मुझे गुरु मानने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

२५. पञ्चवटी में श्रीरामचन्द्र वनवास के समय आकर रहे थे, तो इससे उसे तीर्थ मानने का क्या कारण है?

२६. मैंने वेदों के एक-एक मन्त्र पर पूर्ण विचार किया है। उनमें कोई भी युक्ति विरुद्ध बात नहीं है।

२७. बिना आकार के प्रतिबिम्ब नहीं उतर सकता और जब परमेश्वर का आकार नहीं, तो उसकी मूर्ति झूठी। यदि किसी का फोटो ठीक-ठीक प्रतिकृति उतारकर स्मरण करने और देखने के लिए सामने रक्खी जाए तो ठीक है, परन्तु ब्रह्म की मूर्ति और अनुकृति उतारकर और नकल करना कुछ-का-कुछ कर देना है और सर्वथा मिथ्या और अवैध है।

२८. जैसे माता-पिता अपने पुत्र को सिखाते हैं कि माता-पिता और गुरु की सेवा करो, उनका कहा मानो, ऐसे ही भगवान् ने स्तुति सिखाने के लिए वेद में अपनी स्तुति लिखी है।

२९. भगवान् का मुख तो नहीं है। उसने अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा- चार ऋषियों के हृदय में वेद का प्रकाश किया, परन्तु वेद उन ऋषियों के बनाए हुए नहीं हैं। वे भगवान के बनाए और कहे हुए हैं। वे चारों ऋषि कुछ न पढ़े और न कुछ जानते थे। भगवान् ने उनके द्वारा वेद कहे हैं। जैसे कोई मनुष्य पित्त वा सन्निपात में विवश होकर बोलने लगते हैं, वैसे ही भगवान् ने उन चारों के घट में और वाणी में वेदों का प्रकाश किया और उन्होंने इसके बल से विवश होकर कहा। अतः स्पष्ट है कि वेद भगवान् ने ही कहे हैं।

३०. जीव अपनी जाति- प्रकृति वा स्वरूप में एक हैं और संख्या में अनेक हैं। जैसे एक मनुष्य-जाति है और दूसरी पशु-जाति है, इत्यादि। जैसे जल में जो रंग मिला दोगे जल वैसा ही हो जाएगा, वैसे ही जिस देह में यह जीव जाएगा, वैसा ही उसका रंग-रूप और छोटा-बड़ा देह होगा, परन्तु जीव सबका एक-सा है, जैसा चींटी का वैसा ही हाथी का। ❑❑

संसारभर के विकासवादियों से प्रारंभिक प्रश्न

(आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक,मो0:-09414182178)

अभी हाल में केन्द्रीय मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री माननीय डॉ० सत्यपालसिंह जी के इस कथन कि मनुष्य की उत्पत्ति बन्दर से नहीं हुई, सम्पूर्ण भारत के बुद्धिजीवियों में हलचल मच रही है। कुछ वैज्ञानिक सोच के महानुभाव इसे साम्प्रदायिक संकीर्णताजन्य रूढ़िवादी सोच की संज्ञा दे रहे हैं। मैं उन महानुभावों से निवेदन करता हूँ कि मंत्री जी का यह विचार रूढ़िवादी नहीं बल्कि सुदृढ़ तर्कों पर आधारित वैदिक विज्ञान का ही पक्ष है। ऐसा नहीं है कि विकासवाद का विरोध कुछ भारतीय विद्वान् ही करते हैं, अपितु अनेक यूरोपियन वैज्ञानिक भी इसे नकारते आये हैं। मैं इसका विरोध करने वाले संसारभर के विकासवादियों से प्रश्न करना चाहता हूँ। ये प्रश्न प्रारम्भिक हैं, इनका उत्तर मिलने पर और प्रश्न किये जायेंगे :-

शारीरिक विकास

१. विकासवादी अमीबा से लेकर विकसित होकर बन्दर पुनः शनैः-शनैः मनुष्य की उत्पत्ति मानते हैं। वे बताएं कि अमीबा की उत्पत्ति कैसे हुई?

२. यदि किसी अन्य ग्रह से जीवन आया, तो वहाँ उत्पत्ति कैसे हुई? जब वहाँ उत्पत्ति हो सकती है, तब इस पृथ्वी पर क्यों नहीं हो सकती?

३. यदि अमीबा की उत्पत्ति रासायनिक क्रियाओं से किसी ग्रह पर हुई, तब मनुष्य के शुक्राणु व अण्डाणु की उत्पत्ति इसी प्रकार क्यों नहीं हो सकती?

४. उड़ने की आवश्यकता होने पर प्राणियों के पंख आने की बात कही जाती है, परन्तु मनुष्य जब से उत्पन्न हुआ, उड़ने हेतु हवाईजहाज बनाने का प्रयत्न करता रहा है, परन्तु उसके पंख क्यों नहीं उगे? यदि ऐसा होता, तो हवाईजहाज के अविष्कार की आवश्यकता नहीं होती।

५. उड़ने की आवश्यकता होने पर प्राणियों के पंख आने की बात कही जाती है, तब शीतप्रधान देशों में होने वाले मनुष्यों के रीछ जैसे बाल क्यों नहीं उगे? उसे कम्बल आदि की आवश्यकता क्यों पड़ी?

६. जिराफ की गर्दन इसलिए लम्बी हुई कि वह धरती पर घास सूख जाने पर ऊपर पेड़ों की पत्तियाँ गर्दन ऊँची करके खाता था। जरा बताएं कि कितने वर्ष तक नीचे सूखा और पेड़ों की पत्तियाँ हरी रहीं? फिर बकरी आज भी पेड़ों पर दो पैर रखकर पत्तियाँ खाती है, उसकी गर्दन लम्बी क्यों नहीं हुई?

७. बंदर के पूँछ गायब होकर मनुष्य बन गया। जरा कोई बताये कि बंदर की पूँछ कैसे गायब हुई? क्या उसने पूँछ का उपयोग करना बंद कर दिया? कोई बताये कि बन्दर पूँछ का क्या उपयोग करता है और वह उपयोग उसने क्यों बंद किया, यदि ऐसा ही है, तो मनुष्य के भी नाक, कान गायब होकर छिद्र ही रह सकते थे। मनुष्य लाखों वर्षों से बाल और नाखून काटता आ रहा है, तब भी बराबर वापिस उगते आ रहे हैं, ऐसा क्यों?

८. सभी बंदरों का विकास होकर मानव क्यों नहीं बने? कुछ तो अमीबा के रूप में ही अब तक चले आ रहे हैं और हम मनुष्य बन गये, यह क्या है?

९. कहते हैं कि साँपों के पहले पैर होते थे, धीरे-धीरे वे घिस कर गायब हो गये। जरा विचारो कि पैर कैसे गायब हुए, जबकि अन्य सभी पैर वाले प्राणियों के पैर बिल्कुल नहीं घिसे।

१०. बिना अस्थि वाले जानवरों से अस्थि वाले जानवर कैसे बने? उन्हें अस्थियों की क्या आवश्यकता पड़ी?

११. बंदर व मनुष्य के बीच बनने वाले प्राणियों की श्रृंखला कहाँ गई?

१२. विकास मनुष्य पर जाकर क्यों रुक गया?

किसने इसे विराम दिया? क्या उसे विकास की कोई आवश्यकता नहीं है?

बौद्धिक व भाषा सम्बन्धी विकास

१. कहते हैं कि मानव ने धीरे-धीरे बुद्धि का विकास कर लिया, तब प्रश्न है कि बन्दर व अन्य प्राणियों में बौद्धिक विकास क्यों नहीं हुआ?

२. मानव के जन्म के समय इस धरती पर केवल पशु- पक्षी ही थे, तब उसने उनका ही व्यवहार क्यों नहीं सीखा? मानवीय व्यवहार का विकास कैसे हुआ? करोड़ों वनवासियों में अब तक विशेष बौद्धिक विकास क्यों नहीं हुआ?

३. गाय, भैंस, घोड़ा, भेड़, बकरी, ऊँट, हाथी करोड़ों वर्षों से मनुष्य के पालतू पशु रहे हैं, पुनरपि उन्होंने न मानवीय भाषा सीखी और न मानवीय व्यवहार, तब मनुष्य में ही यह विकास कहाँ से हुआ?

४. दीपक से जलता पतंगा करोड़ों वर्षों में इतना भी बौद्धिक विकास नहीं कर सका कि स्वयं को जलने से रोक ले और मानव बन्दर से इतना बुद्धिमान बन गया कि मंगल की यात्रा करने को तैयार है? क्या इतना जानने की बुद्धि भी विकासवादियों में विकसित नहीं हुई? पहले सपेरा साँप को बीन बजाकर पकड़ लेता था और आज भी वैसा ही करता है परन्तु सांप में इतने ज्ञान का विकास भी नहीं हुआ कि वह सपेरे की पकड़ में नहीं आये।

५. पहले मनुष्य बल, स्मरण शक्ति एवं शारीरिक प्रतिरोधी क्षमता की दृष्टि से वर्तमान की अपेक्षा बहुत अधिक समृद्ध था, आज यह ह्रास क्यों हुआ, जबकि विकास होना चाहिए था?

६. संस्कृत भाषा, जो सर्वाधिक प्राचीन भाषा है, उस का व्याकरण वर्तमान विश्व की सभी भाषाओं की अपेक्षा अतीव समृद्ध व व्यवस्थित है, तब भाषा की दृष्टि से विकास के स्थान पर ह्रास क्यों हुआ?

७. प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थों में भरे विज्ञान के सम्मुख वर्तमान विज्ञान अनेक दृष्टि से पीछे है, यह मैं अभी सिद्ध करने वाला हूँ, तब यह विज्ञान का ह्रास कैसे हुआ? पहले केवल अन्तःप्रज्ञा से सृष्टि का ज्ञान ऋषि कर लेते थे, तब आज वह ज्ञान अनेकों संसाधनों के द्वारा भी नहीं होता। यह उलटा काम कैसे हुआ?

भला विचारें कि यदि पशु- पक्षियों में बौद्धिक विकास हो जाता, तो एक भी पशु- पक्षी मनुष्य के वश में नहीं आता। यह कैसी अज्ञानता भरी सोच है, जो यह मानती है कि पशु- पक्षियों में बौद्धिक विकास नहीं होता परन्तु शारीरिक विकास होकर उन्हें मनुष्य में बदल देता है और मनुष्यों में शारीरिक विकास नहीं होकर केवल भाषा व बौद्धिक विकास ही होता है। इसका कारण क्या विकासवादी मुझे बताएंगे।

आज विकासवाद की भाषा बोलने वाले अथवा पौराणिक बन्धु श्री हनुमान् जी को बन्दर बताएं, उन्हें वाल्मीकीय रामायण का गम्भीर ज्ञान नहीं है। वस्तुतः वानर, ऋक्ष, गृध, किन्नर, असुर, देव, नाग आदि मनुष्य जाति के ही नाना वर्ग थे। ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्रक्षेपों (मिलावट) को पहचानना परिश्रमसाध्य व बुद्धिगम्य कार्य है।

उधर जो प्रबुद्धजन किसी वैज्ञानिक पत्रिका में पेपर प्रकाशित होने को ही प्रमाणिकता की कसौटी मानते हैं, उनसे मेरा अति संक्षिप्त विनम्र निवेदन हैः-

१. बिग बैंग थ्योरी व इसके विरुद्ध अनादि ब्रह्माण्ड थ्योरी, दोनों ही पक्षों के पत्र इन पत्रिकाओं में छपते हैं, तब कौन सी थ्योरी को सत्य मानें?

२. ब्लैक होल व इसके विरुद्ध ब्लैक होल न होने की थ्योरीज इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं, तब किसे सत्य मानें?

३. ब्रह्माण्ड का प्रसार व इसके प्रसार न होने की थ्योरीज़ दोनों ही प्रकाशित हैं, तब किसे सत्य मानें?

ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इस कारण यह आवश्यक नहीं है कि हमें एक वर्गविशेष से सत्यता का प्रमाण लेना अनिवार्य हो? हमारी वैदिक एवं भारतीय दृष्टि में उचित तर्क, पवित्र गम्भीर ऊहा एवं योगसाधना (व्यायाम नहीं) से प्राप्त निष्कर्ष वर्तमान संसाधनों के द्वारा किये गये प्रयोगों, प्रक्षेपणों व गणित

से अधिक प्रामाणिक होते हैं। यदि प्रयोग, प्रेक्षण व गणित के साथ सुतर्क, ऊहा का साथ न हो, तो वैज्ञानिकों का सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ हो सकता है। यही कारण है कि प्रयोग, परीक्षणों, प्रेक्षणों व गणित को आधार मानने वाले तथा इन संसाधनों पर प्रतिवर्ष खरबों डॉलर खर्च करने वाले विज्ञान के क्षेत्र में नाना विरोधी थ्योरीज मनमाने ढंग से फूल-फल रही हैं और सभी अपने को ही सत्य कह रही है। यदि विज्ञान सर्वत्र गणित व प्रयोगों को आधार मानता है, तब क्या कोई विकासवाद पर गणित व प्रयोगों का आश्रय लेकर दिखाएगा?

इस कारण मेरा सम्मान के योग्य वैज्ञानिकों एवं देश व संसार के प्रबुद्धजनों से अनुरोध है कि प्रत्येक प्राचीन ज्ञान का अन्धविरोध तथा वर्तमान पद्धति का अन्धानुकरण कर बौद्धिक दासत्व का परिचय न दें। तार्किक दृष्टि का सहारा लेकर ही सत्य का ग्रहण व असत्य का परित्याग करने का प्रयास करें। हाँ, अपने साम्प्रदायिक रूढ़िवादी सोच को विज्ञान के समक्ष खड़े करने का प्रयास करना अवश्य आपत्तिजनक है।

❑❑

पृष्ठ १४ का शेष

आगे बढ़ा और उसने बच्चे को अपनी ओर खींच लिया। घोड़ा-तांगा चला गया। 'बच्चा बचा लिया गया' पण्डित जी इस बात से तो प्रसन्न थे, पर उन्हें आत्मग्लानि ने दबोच लिया कि बच्चा (चाहते हुए भी) मैंने नहीं बचाया। सच्ची धर्मभावना को झूठी धर्मभीरुता ने तिरस्कृत कर दिया। पूरी रात वे इस पाप का प्रायश्चित सोचते रहे और प्रातः गिरजाघर जाकर वहाँ पादरी से वपतस्मा ले ईसाई बन गए। फिर उन्होंने सरल संस्कृत में बाइबल का अनुवाद किया। इस पुस्तक का ईसाइयों ने खूब स्वागत व प्रचार किया। बाद में (१८५३ इ०) इसी नीलकण्ठ शास्त्री पादरी ने महाराजा रणजीत सिंह के अवयस्क पुत्र दिलीप सिंह को ईसाई बनाया था।

राजा महेन्द्र प्रताप जैसे प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी से भी मन्दिर में प्रवेश करने से पूर्व जाति पूछने वाले हिन्दू धर्म के ठेकेदार महाराष्ट्र के इस नीलकण्ठ पादरी को काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि तीर्थों पर घूम-घूमकर हिन्दुओं को ईसाई बनाने से नहीं रोक पाये। यदि ऋषि दयानन्द सावधान न होते, तो नीलकण्ठ (मोहम्याह नीलकण्ठ घोरी) भुज कच्छ के अवयस्क राजा को भी ईसाई बना देता। दुर्भाग्य तो यह भी रहा कि प्रयाग में (जुलाई १८७४ ई०) काशीनाथ शास्त्री जैसे कुछ हिन्दू ऋषि दयानन्द के पास शास्त्रार्थ के लिए आये थे, तो उनका नेता हिन्दू धर्म से भटका हुआ नील-कण्ठ पादरी ही था। वे सब हिन्दू इस बात की प्रतीक्षा में थे कि कब दयानन्द की हार हो और वे खुशियाँ मनाएँ। पर जब नीलकण्ठ ने हारकर मौन धारण कर लिया, तो काशीनाथ ने अत्यन्त धृष्टतापूर्ण शब्दों में ऋषि दयानन्द से पूछा कि आपने किस अभिप्राय से सारे देश में कोलाहल मचा रखा है?' स्वामी जी ने कहा कि मुझसे पहले पण्डितों ने बड़ा पाखण्ड फैला रखा है, उनकी बुद्धि पत्थरों के पूजने से पत्थर हो गई है, जिसके कारण वे सत्य सिद्धान्तों को समझने में असमर्थ रहे। मैं उनकी जड़पूजा छुड़वाकर उनकी बुद्धि को परिष्कृत करने का उद्योग कर रहा हूँ।' यह सुनकर पादरी मौन होकर सबके साथ चला गया।

भागलपुर में जब ऋषि दयानन्द की पादरियों से बातचीत हो रही थी, तो एक बंगाली ईसाई, जो ब्राह्मण कुलोत्पन्न था, रोने लगा और उसने अत्यन्त दुःखी होकर कहा- 'स्वामी जी, यदि आप जैसे उपदेष्टा मुझे पहले मिलते, तो मैं कदापि ईसाई न होता। उस समय मैं स्कूल में हिन्दू धर्म पर पादरियों के कटाक्ष सुनकर जब घर आता था और पण्डितों से उनके उत्तर पूछता था, तो कोई भी उनके उत्तर न दे सकता था। यदि मुझे उत्तर मिलते तो मैं ईसाई न होता।'

पादरी फ्रेन्क ने भी गुरुकुल ज्वालापुर में पं. मुरारीलाल शर्मा से हारकर रोते हुए कहा था- यदि उस समय आर्यसमाज का जन्म होता, तो मेरे दादा नीलकण्ठ शास्त्री ईसाई न बनते।

❑❑

वेदों की रक्षा और स्वाध्याय क्यों करें?

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून,मो0:-09412985121)

मनुष्य उसी वस्तु की रक्षा करता है, जिसका उसके लिए कोई उपयोग हो व जिससे उसे लाभ होता है। वेद सृष्टि की प्राचीनतम ज्ञान की पुस्तकें हैं। इसमें मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी, तृण से लेकर ईश्वर- पर्यन्त, सभी पदार्थों का ज्ञान उपलब्ध है। वेदों की भाषा भी संसार की आदि भाषा है। अन्य सभी भाषाएं समय-समय पर और संसार के अनेक स्थानों पर मनुष्यों के फैलने पर अनेक कारणों से वहाँ अपभ्रंस आदि होकर बनी हैं। वेदों की भाषा सभी भाषाओं की जननी है। वेदों के अर्थ महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी व महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रन्थों सहित निरुक्त और निघण्टु आदि ग्रन्थों की सहायता से जाने जाते हैं। संसार में व्याकरण के जितने भी ग्रन्थ हैं उनमें पाणिनी की अष्टाध्यायी को व्याकरण का सर्वोत्तम ग्रन्थ सभी विद्वान् भाषाविद् स्वीकार करते हैं। वेदों के पद भी रूढ़ न होकर धातुज व यौगिक हैं। व्याकरण की सहायता से वेदों के पदों के एकाधिक अर्थ होते हैं, जिन्हें प्रकरणानुसार ग्रहण किया जाता है। महाभारत काल पर्यन्त भारत सहित संसार के सभी देशों में वेदों का ही मानवमात्र के धर्मग्रन्थ के रूप में प्रचार-प्रसार रहा है। सभी वेदों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलते थे।

वैदिक युग में ज्ञान- विज्ञान अपनी चरम सीमा तक उन्नत था। ऐसे संकेत प्राचीन अनेक ग्रन्थों के आधार पर उपलब्ध होते हैं। महाभारत व उससे पूर्व काल में वेदसर्वमान्य धर्मग्रन्थ सहित मनुष्यों के आचार- विचार व व्यवहार के ग्रन्थ थे। वेदों में सभी सत्य विद्याएं विद्यमान हैं। वेदों के अपूर्व व अद्वितीय विद्वान् ऋषि दयानन्द की मान्यता है कि वेद सब विद्याओं की पुस्तक है। इसलिये वेदों को सभी मनुष्यों को पढ़ना चाहिये। सभी मनुष्यों का परम धर्म भी वेद है। जो मनुष्य वेद का स्वाध्याय करता है और वेद की शिक्षाओं का आचरण करता है वह जीवन में उन्नति करता है और उसे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होती है। वेद पढ़कर और उसका आचरण कर मनुष्य विद्वान्, महात्मा, ज्ञानी, योगी, ऋषि, मुनि व वैज्ञानिक बनता है। उसका यश व कीर्ति बढ़ती है। उसे आत्मशान्ति व आत्मसन्तोष प्राप्त होता है। वह स्वस्थ रहता है और उसकी आयु बढ़ती है। वेदों का विद्वान् अभक्ष्य पदार्थों मांस, मदिरा, धूम्रपान आदि का सेवन नहीं करता। वह प्रकृतिप्रेमी होता है इसलिए वह पर्यावयण का संरक्षक व रक्षक होता है। वेदों की शिक्षाओं के प्रभाव से मनुष्य सत्य मान्यताओं का पालन करता है और असत्य व भ्रामक विचारों से दूर रहता है। आजकल की स्कूली शिक्षा इसके सर्वथा विपरीत है। बड़े- बड़े पदों पर बैठे लोग भी असत्य का आचरण करते हैं। अधिकांश का आचरण सत्य पर आधारित नहीं होता, वह मिथ्याचारी व भ्रष्टाचारी भी होते हैं। सत्य का आचरण कम ही लोग करते हैं। इसीलिए सरकार ने अनेक कानून बनाए हैं फिर भी देश में भ्रष्टाचार की घटनाएं होती रहती हैं। वेदों के प्रचार से समाज में समरसता का विस्तार व वृद्धि होती हैं।

वेद का अध्ययन व आचरण करने वाला व्यक्ति किसी पर अन्याय व अत्याचार नहीं कर सकता। वह किसी का शोषण भी नहीं कर सकता। वेदों की रक्षा करना सभी मनुष्यों का धर्म इसलिए है कि यह ईश्वर प्रदत्त हैं एवं ईश्वर की मनुष्यों के पास एक धरोहर है, जिसकी रक्षा से हमारी अपनी इहलोक व परलोक की उन्नति होती है। वेदों का आचरण करने से मनुष्य का यह जीवन तो सुधरता ही है और परजन्म भी उन्नत होता है। वेदों से पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिला है, जो तर्क व युक्ति की कसौटी पर सत्य सिद्ध है। ईसाई व मुस्लिम मत में पुनर्जन्म का सिद्धान्त ही नहीं है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त न होने से उसे सुधारने के उपाय भी वहाँ उपलब्ध नहीं है। गीता में डंके की चोट पर कहा गया है कि **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म- मृतस्य च'** अर्थात् जन्म लेने वाले मनुष्य व प्राणियों की मृत्यु निश्चित है और उतना ही निश्चित मरे हुए मनुष्य का जन्म होना है। पुनर्जन्म इस सिद्धान्त से भी सत्य सिद्ध होता है कि भाव से अभाव उत्पन्न नहीं होता और अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। मनुष्य व अन्य प्राणियों की आत्मा अभाव नहीं भाव सत्ता है। इन

जीवात्माओं, ईश्वर व प्रकृति में से किसी का कभी भी अभाव नहीं हो सकता। इसलिए जीवात्मा का मृत्यु के बाद पुनर्जन्म अवश्यम्भावी है। ऐसे अनेक सिद्धान्त हैं, जो मनुष्यों को वैदिकधर्म की शरण में आने पर ही मिलते हैं और वह इस जीवन सहित अपने परजन्म को भी उन्नत व सुरक्षित बना सकते हैं। वैदिकधर्म में मनुष्य अपने इस जन्म में भी सुखी हो सकते हैं और परजन्म में सुखी होने के लिए इस जन्म में सत्कर्म कर उसे भी सुरक्षित कर सकते हैं।

वेदों की उत्पत्ति के विषय में जानना भी महत्वपूर्ण है। वेद संसार के अन्य ग्रन्थों के समान नहीं हैं। अन्य सभी ग्रन्थ मनुष्य व विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं, इस कारण वह सभी पौरुषेय हैं। मनुष्य अल्पज्ञ होते है। अतः उनके ग्रन्थों में भ्रान्तियों का विद्यमान होना स्वाभाविक है। वेदों की उत्पत्ति ईश्वर वा परमात्मा से हुई है, इस कारण से यह अपौरुषेय ज्ञान व ग्रन्थ है। परमात्मा सर्वज्ञ है अर्थात् वह सर्वज्ञानमय है। इस कारण ईश्वर व उसकी कृतियों में कहीं कोई न्यूनता व अल्पज्ञता का दोष नहीं पाया जाता। वेदों को देखने पर इस विचार की पुष्टि होती है। वेदों में कहीं कोई दोष नहीं है। यदि कोई अयोग्य व्यक्ति वेदों को देखेगा, तो वह वेदार्थ न जानने व अपनी न्यूनताओं व दोषों के कारण वेदों के साथ न्याय नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे अनेक भाष्यकार हुए हैं, जो वेदार्थ करने की योग्यता नहीं रखते थे। अतः वह, सायण व महीधर आदि, वेदार्थ करने में न्याय नहीं कर सके। इसका दोष उन्हीं भाष्यकारों को जाता है। वेदों के यथार्थ अर्थ ऋषि व ईश्वर का साक्षात्कार किये हुए योगी ही ठीक-ठीक कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वेदों को अंग व उपांगों सहित पढ़े व्यक्ति जो पवित्र व शुद्ध अन्तःकरण वाले हों, वेदों के यथार्थ अर्थ कर सकते हैं।

वेदों का ज्ञान परमात्मा से सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को मिला था। परमात्मा ने यह ज्ञान अपने सर्वव्यापकत्व एवं सर्वान्तर्यामी स्वरूप से इन चार ऋषियों की आत्मा में प्रेरणा द्वारा दिया था। ऐसा होना सम्भव कोटि में आता है। बाद में इन ऋषियों ने यह ज्ञान ब्रह्माजी नाम के अन्य ऋषि को दिया। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में पांच ऋषि वेदज्ञान सम्पन्न हुए, जिन्होंने अन्य मनुष्यों को वेदों का ज्ञान बोल कर, उपदेश व प्रवचन आदि के द्वारा दिया। सृष्टि के आदि काल में मनुष्यों की स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। वह जो सुनते थे, उन्हें स्मरण हो जाता था। कालान्तर में जब मनुष्यों की स्मरणशक्ति में कमी आयी, तो ग्रन्थरचना का कार्य आरम्भ हुआ और वेदों को लिपिबद्ध किया गया। महाभारत काल तक ऋषियों व उनके शिष्यों द्वारा वेदों का उपदेश आदि के द्वारा प्रचार किया जाता रहा। महाभारत युद्ध में हुई जान व माल की भारी क्षति के कारण वेदाध्ययन अवरुद्ध हो गया। जिससे कालान्तर में देश में अन्धकार फैल गया और अविद्याजन्य, अंधविश्वासों से युक्त मान्यताओं का प्रचार होने लगा। ऐसा चलता रहा और बाद में अनेक मत-मतान्तर भारत व विश्व के अनेक स्थानों में फैले। अब विद्या का प्रकाश हो जाने पर भी प्रायः सभी मत अपनेअस्तित्व को बनाए हुए हैं, जिसका कारण उनकी अविद्या व हित-अहित प्रतीत होते हैं। वेदों के बारे में यह भी बता दें कि चारों वेद ईश्वर की रचना अर्थात् उसका दिया हुआ ज्ञान हैं। यह अन्य ग्रन्थों की भांति किसी मनुष्य की कृति नहीं है।

वेदों की रक्षा क्यों करनी चाहिये? इसका एक कारण यह है कि चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद संसार की सबसे प्राचीन ज्ञान की पुस्तकें हैं। इसमें ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति सहित मनुष्यों के सभी कर्तव्यों का ज्ञान दिया हुआ है। आज भी वेदों की सभी शिक्षाएं प्रासंगिक एवं हमारे लिए उपयोगी हैं। इस कारण से वेदों की रक्षा करनी चाहिये। वेदों की रक्षा वेदों के स्वाध्याय व विद्वानों द्वारा इसके सरलीकरण, नये- नये ग्रन्थों के लेखन, उपदेश, प्रवचन एवं प्रचार से ही हो सकती है। अतः वेदों का सभी को अध्ययन एवं प्रचार करना चाहिये। ऋषि दयानन्द ने वेदों के प्रचार को सभी मनुष्यों का परम धर्म अर्थात् परम कर्तव्य बताया है। यह सत्य ही है। वेदों का अध्ययन करने व उसका प्रचार करने से मनुष्यों को ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होता है और उसे सुख प्राप्ति सहित उसकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति भी होती है।

शेष पृष्ठ २७ पर

संस्कारों के अभाव में भारतीय संस्कृति का मजाक

(गंगा शरण आर्य,नई दिल्ली,मो0:-09871644195)

युगपरिवर्तन संसार का नियम है। जैसे-जैसे हमारा प्यारा भारतवर्ष देश जीवनोपयोगी साधन उप-साधनों के निर्माण में विकसित होने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे हमारे आचार-विचारों में भी विपरीत दिशा में परिवर्तन आ रहा है। पहले हमारे देश में लोग सादा जीवन उच्च विचार वाले होते थे और अब जीवन तो सादा रहा नही, विचार भी दिन-प्रतिदिन गिरते जा रहे हैं। हमारी प्राचीनतम आचार-संहिता से प्रभावित होकर अन्य देश प्रेरणा लेते थे और भारत- भ्रमण पर आते थे, भारतीय ज्ञान-दर्शन करने के लिए आतुर रहते थे, बड़ी विडम्बना की बात है कि आज हमारे बच्चे उस पुरातन संस्कृति का मजाक बना रहे हैं, जिस पर चलकर हमारे पूर्वजों ने सम्पूर्ण विश्व में अपना गौरव स्थापित किया था,आज उन आचार- विचारों का अनुसरण करने वालों को हम अपने ही देश में 'बैकवर्ड' कहकर पुकारते हैं, इससे बड़ी निर्लज्जता की बात हमारे लिए और क्या होगी? यही तो अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था का प्रभाव है। हमारी आँखों के सामने ही आज हमारा समाज फूहड़ बन रहा है। हम लोग इसका विरोध भी नहीं कर रहे। समाज में फूहड़ता फैलाई जा रही है और हम मौन हैं। याद रखिएगा, जब कभी भी स्वेच्छाचारिता में आकर कुचेष्टा करने वालों का विरोध न करके मौन साध लिया गया बड़े-बड़े दिग्गज महात्माओं द्वारा, उस समय महा-विनाश हुआ है। ऐसे ही मौन साधा था आचार्य द्रोण ने, पुत्रमोह में पड़कर महाराज धृतराष्ट्र ने और पितामह भीष्म ने यदि उस समय इन महात्माओं ने मौन नहीं साधा होता,तो महाभारत नहीं होता और आज हमारे देश का नक्शा ही कुछ और होता। महाभारत के पश्चात् भी हमारे देश आर्यावर्त में इतने महान आचार्य हुए, जिन्होंने भारत की पुण्य धरा की आततायियों से रक्षा की। चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने क्या भारत बनाया था, इतना शक्तिशाली और महान कि सिकन्दर का सेनापति चन्द्रगुप्त को अपनी बेटी तक देकर गया था, ताकि भारत से रिश्ता अच्छा बना रहे। चन्द्रगुप्त और चाणक्य तो चले गए और देखते ही देखते हमारा वो भारत लुप्त हो गया। आज का भारत भी कोई भारत है, बिना सिन्ध के, बिना सिन्धु नदी के भारत क्या है? कटा-पिटा भारत है ये और ये सबकुछ हमारी ही आँखों के सामने हुआ है, आज हम बात करते हैं कि ११वीं सदी में पृथ्वीराज चौहान मोहम्मद गौरी से लड़ रहे थे, तो बाकी हिन्दू राजा क्या कर रहे थे? आज हम अपने ही उन पूर्वजों को कोसते हैं, उनके भेदभाव की आलोचना करते हैं, साफ शब्दों में कहें तो हम अपने ही पूर्वजों को गालियाँ देते हैं। महाराणा प्रताप अकेले अकबर से लड़ रहे थे, तो बाकी हिन्दू कहाँ थे? शिवाजी महाराज अकेले औरंगजेब से लड़ रहे थे, तो बाकी हिन्दू कहाँ थे? कुछ हिन्दू लड़ते रहे और अधिकतर नपुंसक की भाँति देखते रहे और भारत का नाश, भारत के टुकड़े-२ भारतीयों की आँखों के सामने ही हुए। अभी लगातार नाश हो रहा है, जिहादी और सैक्यूलर ताकतें तो भारत को तोड़ ही रही हैं, हमारा फिल्मी जगत भी पीछे नहीं है, ये समाज को और युवा पीढ़ी को खोखला कर रहा है आज हमारी युवा पीढ़ी का आदर्श कौन है? सैनिक हैं क्या? नहीं, फिल्मबाज और फिल्मी भांड हैं। असली सैनिक को तो कोई बिरला ही पूछता है पर फिल्मी भांडों को इज्जत अपार मिलती है। ये फिल्मी भांड गालियों तक के गाने बना रहे हैं, अश्लीलता को बेचकर पैसे कमा रहे हैं, ये हमारी युवा पीढ़ी को खोखला कर रहे हैं।१० मई, २०१७ को जस्टिन बीबर कनाडा से भारत में अपना हुनर दिखाने आया था, तो यहाँ के कुछ ज्यादा अंग्रेजी पढ़े-लिखे, अंग्रेजी मानसिकता के गुलाम इन्डियन लोगों ने इसको देखने सुनने के लिए ४०००० से ७०००० रुपये तक टिकट पर खर्च किए और ये ६० मिनट में अरबों रुपया लेकर पढ़े-लिखे लोगों को बेवकूफ बनाकर चला गया। ये वही लोग हैं, जो किसी गरीब जरूरतमंद को १० रुपये देने से पहले १० सवाल पूछते हैं और फिर जरूरी नहीं कि पैसे देंगे भी...। इस संस्कारहीन उज्जड़ बेतुके से लाख

गुणा अच्छा तो हमारे यहाँ बस, ट्रेन आदि में ढपली बजाने वाला गाता है। अब समझ में आया भारत इतना गौरवशाली इतिहास रखने के बावजूद गुलाम कैसे रहा. ..? ऐसे संस्कारहीन पढ़े-लिखे अनपढ़ों की बहुतायात की वजह से। विदेशी हमारे सत्य सनातन संस्कारों के दिवाने हुए जा रहे हैं और यहाँ के बेवकूफ अपनी संस्कृति को तबाह करने पर तुले हुए हैं और ये सबकुछ हमारी आँखों के सामने ही तो हो रहा है। इसलिए ए! ऋषियों की सन्तानो! समय रहते चेत जाओ नहीं तो बहुत बुरा समय आएगा, तब कुछ हाथ न लगेगा।

इसमें सबसे बड़ा दोषी शासक वर्ग है। यदि यही चलता रहा, तो आने वाले कल में हमारे समाज में बलात्कारियों और अश्लीलता का धंधा करने वाले लोगों की संख्या बहुत होगी और हम उस समय खुद को ही कोसेंगे कि हमने इनका विरोध समय रहते क्यों नहीं किया, हमारा देश और हमारा समाज हमारी ही आँखों के सामने मर रहा है और हम फिर भी मौन हैं, इतिहास हमें ही दोषी बताएगा। जैसे हम पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण को जो भरी सभा में मौन थे, उनको अपमानभरी नजरों से देखते हैं और सोचते हैं कि काश! उस समय इन धनुर्धर एवं धर्मधुरन्धरों ने चुप्पी न साधी होती, तो आज भारत की ये दुर्दशा न हुई होती, विदेशी आक्रान्ताओं की हमारे देश की ओर नजर उठाने की हिम्मत ही नहीं होती, इसलिए आप स्वयं ही विचार कर लीजिए कि आज अगर हमने विरोध नहीं किया, तो भविष्य में क्या स्थिति होगी?

आधुनिक परिवेश में एडवांस होने के नाम पर जब अश्लीलता का धन्धा करने वाली अभिनेत्रियाँ लड़कियों की आदर्श बन जाएं और माँ-बहन की गालियों का गाना बनाने वाला भाण्ड लड़कियों का हीरो बन जाए, तो ऐसी लड़कियों की कोख से देशभक्त, सन्त, योद्धा एवं वीर नहीं बल्कि बलात्कारी ही पैदा होंगे। आज की वर्तमान स्थिति पर नजर जाती हैं, तो सोचता हूँ कि राष्ट्र की कर्णधार युवा पीढ़ी किस ओर जा रही है, बिना हैलमेट, बिना लाईसेंस कानून की धज्जियां उड़ाते हुए एक ओर जहाँ १३-१४ वर्ष के भावी युवा एक बाईक पर तीन-तीन बच्चे बैठकर, मोबाईल की लीड लगाकर, गधाकट (जो कटिंग पहले कभी गधे की पहचान के लिए उनके शरीर पर बनाई जाती थी) की डिजाईन में बाल कटिंग करवाकर मर्यादाओं को रौंदते जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर १०-१२ वर्ष की भावी युवतियाँ भी पाश्चात्य सभ्यता का जीवन जीने की इस दौड़ में पीछे नहीं है, टी-शर्ट व जीन्स की पैन्ट या निक्कर वो भी जांघों का जरा सा हिस्सा ढकी हुई पहने, हाथ में मोबाईल लेकर डांस-बार या क्लब आदि में लड़कों के संग नाच-कूद करती हुई पता नहीं किस मार्ग पर चल पड़ी हैं। और जब मैं बाईक पर किसी युवा को देखता हूँ, तो मेरा खून खौल उठता है और सोचता हूँ क्या यह सही है भारतीय संस्कृति का प्रारूप? ये तो भारतीय जीवनशैली बिल्कुल नहीं है फिर भारतीय जीवनशैली जी रहे लोग क्यों चुप्पी सुधे हुए हैं? हमारे यहाँ की जीवनशैली अर्थात् आचार-संहिता में ऐसी कौन-सी खराबी इस नई पीढ़ी को नजर आती है? क्यों आधुनिकता के नाम पर ये पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति की ओर खिचते जा रहे हैं। विलासिता से पूर्ण इस जीवनशैली को जीने के लिए आज हमारी युवा पीढ़ी किधर भटक गई है? इसका दोषी कौन है? विकास की आड़ में कौन-सा पतन भरा पतझड़ युवाओं में आ गया है? वर्तमान समय के इस परिवर्तन को देखकर मन में अनेक प्रश्न उठते हैं। हमें विचार करना ही होगा कि किस प्रकार अपनी आने वाली पीढ़ियों को इस बेकार की बाढ़ से बचाया जाए? क्योंकि बाढ़ आने की आशंका हो, तो बाढ़ आने से पूर्व ही पुल बाँध देना चाहिए, नहीं तो जलप्रलय होती है।

भारतवर्ष की पावन स्थली उसकी रामणीय प्रकृति, शिक्षाप्रद सभ्यता, नवरंगी छटा बिखेरती दिव्य संस्कृति, समाज को बांधकर रखने वाली पवित्र परम्पराएं ,जहाँ मर्यादा के स्वर मुखरित हों, नैतिकता की शिक्षा से समाज को प्रेम का संदेश देकर जीवन जीने की प्रेरणा मिलती रही है, वहाँ आज इस परिवर्तन के कारण पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि आधुनिक शिक्षा के नाम पर हो रहा छलावा ही हमारी संस्कृति को नष्ट कर रहा है। देर रात जागरण, नशा करना, इंटरनेट का खुलकर प्रयोग, मोबाईल में फूहड़ व अश्लील फिल्में देखना, भोजन की मर्यादा का उल्लंघन, शयन-जागरण सब बदल गया। आज स्थिति इतनी भयावह होती जा रही है कि लगभग ४०% माता-पिता को पता ही नहीं है कि उनका लाडला, उनके जिगर का टुकड़ा घर से कब जाता है और कब वापिस आता है और कहाँ जाता

है, क्या करता है? आज के माता-पिता बच्चों के सामने इतने कमजोर पड़ गए हैं कि वो अपने कर्तव्यों का सख्ती से पालन करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं और संतानों के वशीभूत होकर, डर के मारे उनकी स्वच्छन्दता को बढ़ावा दे रहे हैं। आए दिन बच्चों की सुसाईड और घर छोड़कर भाग जाने वाली खबरों को देख-सुनकर मात्र एक-दो संतानों को रखने वाले माता-पिता इतने डरे हुए हैं कि वे सोचते हैं कि अगर उन्होंने अपने बच्चों के साथ ज्यादा सख्ताई बरती या उनकी किसी अनावश्यक बात को ना माना, तो वे कुछ बुरा न कर बैठें। बस बच्चे माता-पिता की इसी कमजोरी का फायदा उठाकर उन्हें जीवन भर अपनी उंगली पर नचाते रहते हैं और माँ-बाप बेचारे कोल्हू के बैल के समान उनकी खुशियों को पूरा करने के लिए दिन-रात दौड़ते रहते हैं। कभी अपने बच्चों को चाहकर भी नैतिक-मूल्यों की कदर करना नहीं सिखा पाते, कभी संस्कार और मर्यादा का पाठ नहीं पढ़ा पाते क्योंकि वह ये मान बैठे हैं कि वास्तव में अगर उन्होंने संस्कार, मर्यादा और जीवन में आगे बढ़ने के लिए अत्यावश्यक नैतिक-मूल्यों का पालन करने की बाबत बच्चों पर जरा भी दबाव देंगे, तो अवश्य ही कुछ गलत कदम उठा बैठेंगे। और बहुत से माता-पिता तो यह कहकर बात टालने की कोशिश करते हैं कि बच्चों की खुशी के लिए बच्चों की माननी ही पड़ती है। उनकी पसन्द के अनुसार ही उन्हें कपड़े आदि दिलाने पड़ते हैं। माता-पिता का यही झुकाव उनकी सबसे बड़ी गलती होती है। लेकिन मेरा मानना है कि केवल वही माता-पिता बच्चों की जिद कह लो या स्वच्छन्दता के आगे झुकते हैं, जो कहीं ना कहीं स्वयं भी आधुनिकता के नाम पर डगमगाये हुए होते हैं। नहीं तो क्या, जिन बच्चों को खुश देखने के लिए वे उनकी हर बात मानते हैं क्या वे बच्चे अपने माता-पिता की छोटी-छोटी इच्छाओं पर ध्यान नहीं देंगे? जरूर देंगे लेकिन कब?

देखिए बच्चा तब आपकी बात मानेगा, जब आप उसके अच्छे-बुरे का ध्यान रखकर फैसला लेंगे, न कि बिना सोचे-विचारे बस ये मानकर कि कहीं बच्चा कुछ गलत न कर बैठे या उसकी खुशी इसी में है ये सोचकर उसकी गलत बात को भी मान लेते हैं। आपको ये भी विचार करना चाहिए कि यदि आज आपने अपने बच्चे की इस स्वेच्छाचारिता को नहीं रोका, तो कल जब वह कोई गलती कर बैठेगा, तो सबसे पहले वह आपको ही दोष देगा कि आपने उसे यह करने के लिए रोका क्यों नहीं, इस काम के करने के अच्छे-बुरे परिणामों से अवगत क्यों नहीं कराया? और भगवान न करें कि आपके बच्चे के साथ कोई अप्रिय घटना इस स्वेच्छाचारिता के कारण हो जाए, तो आप स्वयं भी अपने आप को कभी माफ नहीं कर पाएंगे, जीवन भर यही सोचते रहेंगे कि काश मैं अपने बच्चे को बचपन से ही अच्छे संस्कार दे पाता, उसकी बातों में न आता, उसे अपनी बात समझा पाता। और फिर जब आप अपने बच्चों की बात मान सकते हैं, तो आपके अन्दर इतनी क्षमता भी होनी चाहिए कि आप उससे अपनी बात भी मनवा सकें।

और एक नया पहनावा मेरे देश की माताओं व बहनों के परिधान के रूप में चल पड़ा है, जिसे शॉर्ट्स कहते हैं। माँ, बहन, बेटी इन शब्दों का प्रयोग जब आप करते होंगे, तब साड़ी में लिपटी किसी औरत या सूट पहने हुई या फ्रॉक पहने हुई किसी लड़की की काल्पनिक तस्वीर मन में बन जाती होगी, क्योंकि आज तक आपने अपनी माँ, बहन, बेटियों को इसी प्रकार के वस्त्रों में देखा था। लेकिन अब जाने कौन सी हवा इस देश में चल पड़ी है कि स्वतन्त्रता के नाम पर महिलाएं भी स्वच्छन्द हो चली हैं। पता नहीं, क्या सोचकर मेरे देश की बेटियाँ अनावश्यक नग्नता वाली पोशाक पहनकर घूमने लगी हैं। और जब कुछ गलत हो जाए, तो कहती हैं कि पोशाक नहीं सोच बदलने की जरूरत है। हाँ, मैं भी मानता हूँ कि सोच बदलने की आवश्यकता है लेकिन सोच बदलने की नौबत आई ही क्यों? क्या वह लड़कियाँ जो ये कहती हैं कि कपड़े नहीं, सोच बदलो उन लड़कियों ने कभी अपनी सोच का आंकलन किया है? नहीं अगर करती तो ऐसा कभी नहीं कहती कि पुरुषों को अपनी सोच बदलनी चाहिए लेकिन मैं ये कहता हूँ कि आखिर छोटे-छोटे कपड़े पहनने के पीछे उनकी सोच क्या है? क्या सोचकर वे ऐसे कपड़े पहनती हैं, जिनमें से उसके स्तन, पीठ, जांघें इत्यादि का स्पष्ट आकार नजर आता है। इस तरह के परिधान पहनने की सोच तो सिर्फ यही है कि पूरा पुरुष समाज उन्हें देखे क्योंकि कभी भी सभ्य लड़की ये नहीं चाहेगी कि कोई उसे कामुक दृष्टि से देखे। और अगर उनका तर्क

यही है कि सोच बदलिए, तो फिर हर बात को लेकर अपनी सोच बदलिए जैसे कि यदि कोई आपको गाली बके, तो उसे गाली नहीं, प्रेमसूचक शब्द समझिए। हत्या, चोरी, डकैती, बलात्कार, आतंकवाद इत्यादि सबको लेकर सोच बदली जाए सिर्फ नग्नता को लेकर ही क्यों? कुछ लड़कियाँ ही कहती हैं कि हम क्या पहनेंगे ये हम तय करेंगे पुरुष समाज नहीं। बहुत अच्छी बात है, आप ही तय करें लेकिन हम पुरुष भी किस लड़की का सम्मान/मदद करेंगे, ये भी हम तय करेंगे, स्त्रियां नहीं। और हम किसी का सम्मान नहीं करेंगे, इसका ये मतलब नहीं है कि हम उसका अपमान करेंगे घोर उपेक्षा भी तो कर सकते हैं। इस पर कुछ विवेकहीन लड़कियाँ कहती हैं कि हमें आजादी है अपनी जिंदगी जीने की। जी हाँ, बिल्कुल आजादी है, ऐसी आजादी सबको मिले, व्यक्ति को चरस, गांजा, ड्रग्स, ब्राउन शुगर लेने की आजादी हो, गाय, भैंस का मांस खाने की आजादी हो, खुलेआम वैश्यालयों में जाने की आजादी हो, यहाँ तक कि वैश्यालय खोलने की भी आजादी होनी चाहिए और पोर्न फिल्में बनाने की आजादी हो, हर तरफ से व्यक्ति को आजादी हो आप खुद ही विचारिए कि क्या आप हमारी इन बातों को मानेंगे? लेकिन हम आपकी बात को मान लेंगे उसके लिए एक ही शर्त होगी कि आपको एक औरत की गरिमा को समझना होगा हमारे भारत देश की संस्कृति कहती हैः-

"यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं। क्या आप स्वयं किसी अर्धनग्न वस्त्र पहनी हुई लड़की को यदि आपकी भाभी बनाने का प्रस्ताव आए तो स्वीकार करेंगी, उसे अपनी भाभी बनाना? क्या पसन्द करेंगी कि आपका भाई उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें? क्या आपके घर की बहु आपके पिताजी या अपने जेठ के सामने घर में शॉर्ट्स पहन कर घूमे, ये आपको अच्छा लगेगा? जहाँ तक मैं समझता हूँ कोई भी सभ्य घराने की सुशील व संस्कारी लड़की तो खुद ही इस प्रकार के वस्त्र पहनना पसन्द नहीं करेगी। और जो लड़कियाँ कहती हैं कि लड़के अपनी सोच बदलें हमारे वस्त्रों पर ध्यान न दें। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या उन्होंने कहीं भी भारतीय परम्परा में निजी अंगों का प्रदर्शन करने वाले परिधानों को अपनी दादी या नानी या अपनी माँ को पहने हुए देखा है? जब से टेलीविजन पर फिल्मों का प्रचार होने लगा, तो उसमें भी सैंसर बोर्ड अश्लील दृश्यों वाली फिल्मों पर रोक लगा देता था। किसी भी पुरानी फिल्म को उठाकर देख लो, उनमें कहीं भी हीरोईन अर्धनंगे वस्त्र पहनी हुई है क्या? क्यों नहीं है, पता है आपको क्योंकि भारतीय परिवेश ही नहीं है ऐसा। हाँ एकाध हेलन जैसी हीरोईन दिखाई गई है, वो भी डांस-बार या कैसीनों आदि में काम करने वाली के रूप में दिखाई गई न कि किसी अच्छे घराने की बेटी या बहू का रोल कर रही लड़की को कभी भी अर्धनंगे वस्त्रों में दिखाया गया है।

लेकिन आज का तो सैंसर बोर्ड ही न जाने किन हाथों में हैं और न जाने हीरोईन बनने वाली लड़कियाँ भी चंद रुपयों की खातिर क्यों अपने वस्त्र उतारने में लगी हैं। अगर ये नग्नता ही आधुनिकता की परिचायक है, तो मैं कहूंगा कि गाय, भैंस आदि की तरह पूरी नग्न होकर क्यों न रहें। यदि अंग प्रदर्शित करने वाले कपड़ों को पहन कर घर से निकलने में कोई बुराई नहीं है तो बिना कपड़े पहने ही घर से निकलने में क्या बुराई है? मैं मेरी माताओं-बहनों से ये प्रश्न करना चाहता हूँ कि यदि सब कुछ हमारी सोच पर निर्भर है और सोच को ही बदलना है, तो फिर तो लड़का हो या लड़की दोनों ही बिना वस्त्रों के घर के अन्दर-बाहर घूमें? क्योंकि आपकी सोच तो गलत नहीं है? फिर आधे-अधूरे कपड़ों का बोझ भी क्यों शरीर झेले? मेरा कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि जिस प्रकार गली-मोहल्ले में शराब-माँस आदि की दुकान खोल देने पर बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है ठीक उसी प्रकार अंग प्रदर्शित करने वाले वस्त्र पहनकर घूमना भी समाज में यौन-अपराधों को जन्म देता है। फिर चाहे लड़की पहने या लड़का दोनों के लिए ही इस प्रकार का पहनावा गलत है। आज के युग में फैशनेबल वस्त्र-आभूषण, महंगे मल्टीमीडिया स्मार्ट मोबाईल फोन और नई चमचमाती निजी परिवहन के साधन ही सम्मान के प्रतीक बन गए हैं, इसके अतिरिक्त महंगे होटलों में पार्टी, मीटिंग व भेंटवार्ता करना और मदिरापान करना शिष्टाचार बन गया है। हमें दो कदम भी जाना हो, तो निजी वाहन की जरूरत होती है। कभी-कभी वाहन के खराब होने पर हम अपना अन्यत्र

जाने का कार्यक्रम ही निरस्त कर देते हैं। वर्तमान पीढ़ी की ये सोच बन चुकी है कि ये सब भौतिक साधन आज हमारी सम्पन्नता आर शालीनता को प्रदर्शित करने के माध्यम हैं।

पुरातन काल में जहाँ भारत मात्र भौतिक साधनों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना के कारण विश्वगुरु कहलाया वहीं वर्तमान काल में भारत का अस्तित्व भौतिक साधनों की चकाचौंध में धुंधला होता जा रहा है। हम अब पूर्व से पश्चिम की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हम जानते हैं कि सूर्योदय हमेशा पूर्व दिशा में ही होता है और अस्त होता पश्चिम में, मगर पश्चिम की हवा की सम्मोहक शक्ति के कारण हम आप अपना पूर्व छोड़कर पश्चिम की ओर अग्रसर हैं। भारत देश को तोड़ने की साजिश आज चैनलों, मीडिया के द्वारा रूपयों की चमक में हो रही है व नौकरी, धंधे के नाम पर, धर्मा परिवर्तन का कुचक्र चला। क्लबों, बारों की बाढ़ ला अश्लीलता परोस, व्यसनों को युवाओं के मत्थे मढ़, खाद्य पदार्थों में गौमांस आदि मिलावट कर जिस भी प्रकार से संभव हो उसी प्रकार से विदेशी ताकतें भारतीय संस्कृति की तार को तोड़ने में लगी हुई हैं और हम भी उनकी चालों में विकास के नाम पर फँसते चले जा रहे हैं। हमने अपनी मातृभाषा, स्वदेश चिकित्सा पद्धति का लगभग परित्याग कर दिया है लेकिन यदि हम थोड़ा सा भी गहराई से चिंतन करते हैं, तो पता चलता है कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति एवं चिकित्सा पद्धति तो अंग्रेजी शासनकाल के दौरान ही भारत में आई है। उससे पहले क्या तीर या तलवार आदि से घायल होने वाले लोगों का उपचार हमारे वैद्य नहीं करते थे? क्या स्वर्ण आदि की मुद्राओं से भरे राजकोष के गणित का हिसाब-किताब रखने के लिए विदेश से एकाऊटैण्ट बुलाए जाते थे? भीम की किल्ली, तोप आदि और ऐसे अनेक ऐतिहासिक वस्तु व स्थान हमारे ज्ञान- विज्ञान की पहुँच को दर्शाते हैं, जिनके विषय में हमारे बच्चों को पढ़ाया ही नहीं जाता है। हमारे देश का ज्ञान-विज्ञान इतना उन्नत था कि उसके प्रयोग से बनी वस्तुओं से हानि कम और लाभ ज्यादा से ज्यादा ही होता था। पशु-पक्षी आदि भी हमारे संचार आदि के साधनों में सहायक थे लेकिन आज के संचार के साधनों इंसान तो क्या बेचारे इन बेजुबान जीवों का भी जीना दूर्भर कर दिया है और जो इन मोबाईल, सेटेलाईट, इंटरनेट आदि चलाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले टावरों से निकलने वाली विकिरणों के दुष्प्रभाव की चपेट में नहीं आते, उन्हें खान-पान की बिगड़ी आदतों के कारण लोग मार कर पका खा जाते हैं।

हमें व आप जैसे माता-पिता और समाज-सुधारकों को मिलकर बस इसी बात का ध्यान रखना है कि किस प्रकार अपने बच्चों में अपनी संस्कृति व संस्कारों से जुड़ाव बनाएं, ताकि हमारे बच्चे अच्छे व्यक्तित्व से परिपूर्ण समाज व राष्ट्र के लिए हितकारी अच्छे इंसान बन सकें। लेकिन हम अपने कर्तव्यों से इतने भगोड़े हो गए हैं कि गृहस्थ की सफलता का जो दायित्व था हमारे कन्धों पर राष्ट्र के लिए सुप्रजा के निर्माण का, उसे ही हम भूल गए हैं। आज हमारी संस्कृति का जो मजाक या खिल्ली उड़ रही है, उसके लिए कहीं न कहीं हम और हमारी शिक्षा ही जिम्मेदार है। और यदि हम अपनी जिम्मेदारी समझकर अपने बच्चों को संस्कारित करने का प्रयास करेंगे, तभी तो बच्चे घर में रहने वाले बुजुर्गों की देख-रेख करेंगें, नहीं तो आज के आधुनिक परिवेश में तो आप जानते ही हैं कि माता-पिता को वृद्धाश्रमों में रोता-बिलखता छोड़ स्वयं अपने बीबी-बच्चों के साथ या तो विदेशों में पलायन कर जाते हैं या उन्हें एकाकी जीवन जीने के लिए मजबूर कर देते हैं। अब पहले की तरह परिवारों में प्रेमपूर्ण व्यवहार भी समाप्त होता जा रहा है। माता-पिता से बातचीत भी केवल अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु करते हैं। यदि हमने अभी से ध्यान नहीं दिया, तो रिश्ते केवल मात्र औपचारिकता के ही रह जाएंगे। और साल में एक बार ही दुनिया दिखावे के लिए 'मदर्स डे' व 'फादर्स डे' आदि के रूप में सिमट कर रह जाएंगे। इसलिए आओ! हम आज से और अभी से सचेत हो जाएं, जागरूक हो जाएं, ताकि हमारा देश व हमारी संस्कृति फिर से विश्व का मार्गदर्शन करने वाली महान संस्कृति बन जाए। इसके लिए हमें सामाजिक स्तर पर सर्वप्रथम युवा मानस को प्रतिबन्धित करना होगा। दिनचर्या व पहनावे और परिधानों पर कड़ाई से पालन करने हेतु सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है। कानून का भय, शिक्षा में उज्जवल संस्कारों की व्यवस्था करनी होगी। पत्र-पत्रिकाओं में मातृशक्ति की भड़काऊ व उत्तेजक तस्वीरों पर प्रतिबन्ध लगाना होगा। टी.वी.

चैनलों से बुरा प्रभाव डालने वाले, संस्कारविहीन, कार्यक्रमों पर रोक लगानी होगी। तभी हमारी युवा पीढ़ी का जीवन मूल्य सुरक्षित होगा। हमारा राष्ट्र दिन-दोगुणी रात-चौगुणी तरक्की करे अर्थात् खूब उन्नत हो, इससे बड़ा और क्या सौभाग्य होगा लेकिन चारित्रिक पतन के मूल्य पर यदि ऐसा होता है, तो इससे बड़ा दुर्भाग्य भी नहीं होगा। आज की युवा प ीढ़ी को स्वतन्त्रता और स्वछन्दता में ही अन्तर नहीं पता है। एकबार मैं अपने किसी परिचित मित्र के घर गया हुआ था, तो मैंने उनकी बेटी से पूछा कि बताओं बेटा स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है? तो निःसंकोच होकर उसने उत्तर दिया कि घर में या घर के बाहर किसी की रोक-टोक का न होना ही स्वतन्त्रता है। बस स्वतन्त्रता के इसी अर्थ में आज के युवाओं ने अपनी दुनियां समेट रखी है। उन्हें पता ही नहीं है कि जिसे वे स्वतन्त्रता कह रहे हैं, वह स्वतन्त्रता नहीं स्वेच्छाचारिता है। उन्हें ये समझना ही होगा कि जैसे सड़क पर गाड़ी चलाते हुए चौराहा पार करते समय यदि रेडलाईट हो जाए, तो इसका मतलब है रुको, नहीं तो भयंकर दुर्घटना होने की संभावना होती है। क्रॉस करते समय रेडलाईट होने पर यदि आप रुकते हो, तो ये आपने मर्यादा का पालन किया है। ये है स्वतन्त्रता और यदि रेडलाईट होने पर भी आपने सड़क को पार किया, तो ये आपने मर्यादा का उल्लंघन किया है, ये है स्वछन्दता। इसी प्रकार हमारी संस्कृति व हमारे संस्कार हमें मर्यादाओं का पालन करना सिखाते हैं जिनको हमें ध्यान में रखकर चलना चाहिए। अपनी संस्कृति व संस्कारों की पुनर्स्थापना का यह पुनीत व रचनात्मक कार्य युवा पीढ़ी के माध्यम से ही कैसे हो, मातृशक्ति मोह को त्यागकर किस प्रकार इस पुण्य कार्य में सहयोगी हो सकती है, आदि विषयों पर विचार-विमर्श कर घिसी-पिटी भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति से दूरी बनाकर पुनः भारतीय संस्कृति व संस्कारों की स्थापना करने का शंखनाद फूंकना होगा इसके लिए समाज व शासन दोनों को मिलकर कार्य करना होगा।

हे देश के कर्णधारा! उठो और जागृत होकर अपने देश और धर्म की रक्षा का प्रण लेकर संस्कारों व संस्कृति के पुनर्निर्माण के कार्य में जुट जाओ। 'भारत माँ' तुम्हारे सिराहने खड़ी तुम्हें पुकार रही है।

❑❑

पृष्ठ २१ का शेष

वेदों की रक्षा व स्वाध्याय हमें इसलिये भी करना चाहिये क्योंकि सृष्टि की आदि से हमारे सभी पूर्वज वेदों का अध्ययन करते आये हैं। हमें अपने पूर्वजों की ज्ञान सम्पति वेदों की रक्षा करनी उचित है और यह हमारा कर्तव्य और धर्म भी है। हमारे पूर्वज मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, पतंजलि, गौतम, कणाद, कपिल, व्यास, दयानन्द आदि सभी वेदों के विद्वान थे और यह योग्यता व उपाधि उन्हें वेदाध्ययन से ही प्राप्त हुई थी। वेदों को पढ़कर हम भी उनके जैसे बन सकते हैं। प्राचीन व अर्वाचीन सभी विद्याओं का आधार व मूल भी वेद ही है। उपनिषद, दर्शन, गृह्य- सूत्र, आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक व सुश्रुत आदि, मनुस्मृति, ज्योतिष आदि सभी ग्रन्थों का आधार वेद है। वेद ही ईश्वर व आत्मा आदि के सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराने वाले आधार गन्थ हैं। वेदों से ही हमें अपने कर्तव्यों व ईश्वरोपासना आदि का सत्य ज्ञान प्राप्त होता है। वेदों की शिक्षाएं विश्व में सुख व शान्ति उत्पन्न करने में उपयोगी व महत्वपूर्ण हैं। इसका कारण यह है कि वेद सत्य व्यवहार पर बल देते हैं और सत्य व्यवहार से ही विश्व, देश-देशान्तर व समाज में सुख व शान्ति स्थापित हो सकती है। यह भी उल्लेखनीय है कि वेदों की सभी शिक्षाएं किसी एक मनुष्य समुदाय विशेष के लिए न होकर पूरी मानवता के लिए हैं। इस कारण वेद संसार का एकमात्र साम्प्रदायिकता से रहित सर्वोच्च धर्मग्रन्थ हैं। वेदों की भाषा के महत्व के विषय में हम पूर्व ही लिख चुके हैं। ऐसे अनेक कारण है, जिससे हमें वेदों की रक्षा करनी चाहिये और इसका उत्तम साधन वेदों का स्वाध्याय व उपदेश आदि द्वारा प्रचार है। ऋषि दयानन्द ने भी इस कार्य का अवलम्बन लिया था। उन्होंने हमें वेदों की शिक्षाओं से परिचित कराने और वेदों का महत्व बताने वाले सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि सहित वेदों का संस्कृत व हिन्दी भाष्य भी दिया है। यदि हम वेदों की रक्षा करते हैं तो इससे हमारा व विश्व का भला होगा। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७	रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
Post in Delhi R.M.S	लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
०५-११/०३/२०१८	Licenced to post without prepayment
भार- ४० ग्राम	Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6

Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.........................

ग्राम.........................

डा0 ....

जिला.........................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।